चतुर्थ अध्याय

पारिवारिक आधार

4.1 संयुक्त परिवार में मैत्री भाव एवं द्वेष

4.2 एकाकी परिवार में सहयोग एवं विरोध

4.3 स्नेहपूर्ण पारिवारिक सम्बन्ध

4.4 पारिवारिक सम्बन्धों में खोखलापन एवं संवेदनहीनता

4.5 दाम्पत्य सम्बन्धों में तनाव एवं बिखराव

4.6 विवाह–पूर्व एवं विवाहेतर प्रेम सम्बन्ध

4.7 बुजुर्गों के प्रति उपेक्षाभाव

4.8 पीढ़ीगत अन्तराल से उपजा तनाव

4.9 अकेलापन एवं संत्रास

चतुर्थ अध्याय

पारिवारिक आधार

साहित्यकार का यह अथक् प्रयास रहता है कि उसका लेखन सामाजिक सरोकारों से सम्बद्ध रहे, क्योंकि उसके द्वारा प्रदत्त सरोकारों से ही समाज में नये मूल्यों, नयी मान्यताओं को प्रस्थापित किया जा सकता है। रचनाकार मृणाल पाण्डे के लेखन का भी यही अभीष्ट है। उन्होंने अपने कथा–साहित्य में भारतीय पारिवारिक व्यवस्था से जुड़े विविध आधारों का सूक्ष्म, विस्तृत एवं गहन विश्लेषण किया है। पारिवारिक जीवन का कोई भी पक्ष उनकी लेखनी से अछूता नहीं रहा है।

अपनी समस्त रचना–प्रक्रिया में मृणाल जी की दृष्टि मूलतः मानवीय सम्बन्धों के विवेचन–विश्लेषण पर ही केन्द्रित रही है। इस विवेचन में संयुक्त तथा एकल परिवार, दाम्पत्य एवं अन्य पारिवारिक सम्बन्ध, पीढ़ीगत अंतराल, अकेलापन एवं संत्रास आदि विषय समाहित हैं। एक ओर उन्होंने भारतीय परिवारों के वर्तमान यथार्थ अर्थात् उसके तेजी से विघटित हो रहे स्वरूप को अंकित किया है, तो दूसरी ओर उन्होंने भारतीय परिवार की ऐसी झांकियाँ भी यत्र–तत्र प्रस्तुत की हैं, जिनमें परम्परागत भारतीय मूल्य आज भी पूर्णतया सुरक्षित प्रतीत होते हैं। प्राचीन एवं नवीन पारिवारिक मूल्यों को तुलनात्मक रूप में प्रस्तुत करते हुए उन्होंने पुरातन मूल्यों को ही अपेक्षाकृत श्रेष्ठ सिद्ध किया है।

अतः प्रस्तुत अध्याय में मृणाल पाण्डे के कथा–साहित्य में सामाजिक सरोकार के प्रमुख घटक 'पारिवारिक आधार' विषयक दृष्टिकोण का निरूपण किया जायेगा।

4.1 संयुक्त परिवार में मैत्री भाव एवं द्वेष

भारतीय परिवार की प्रकृति मुख्यतः संयुक्त है। डॉ० एम०सी० दुबे के शब्दों में, ''यदि कई मूल परिवार एक ही साथ रहते हों और इनमें निकट का नाता हो, एक ही स्थान पर भोजन करते हों, और एक ही आर्थिक इकाई के रूप में कार्य करते हों तो उन्हें संयुक्त परिवार कहा जाएगा।''[1] संयुक्त परिवार में सब कुछ

---

1 वीरेन्द्रा, इन्दु, साठोत्तरी कहानी में परिवार, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, सन्–2008, पृ०सं०–18

सांझा होता है, सांझे खेत, सांझे काम–धन्धे, सांझी सम्पत्ति, सांझे उद्देश्य, सांझे हित, सांझी मानसिकता, सांझी रसोई, सांझी घरों की दीवारें, सब कुछ अखण्ड, अविभाज्य एवं संयुक्त।

भारतीय समाज में संयुक्त परिवार का विशेष महत्त्व है। मृणाल पाण्डे द्वारा रचित 'पटरंगपुर पुराण' उपन्यास में 'आमा' पात्र पारम्परिक संयुक्त परिवार का वह खाका प्रस्तुत करती है जिसमें परिवार के समस्त सदस्य मिल–जुल कर तन–मन से कार्य करते हैं। घर की महिला सदस्यों में भी तारतम्यता का भाव परिलक्षित होता है। ''एक कुटुम्ब ठहरा पटरंगपुर में पाण्डे लोगों का। खाते–पीते पाटिया के पाण्डे ठहरे। सौ–एक जनों का कुटुम्ब हुआ वह। भारी–भारी बरतनों में खाना पका के चार–चार बहुएँ एक पतीला नीचे उतारने वाली हुईं चूल्हों से। वार–पार फैली रसोई हुई उनकी।''[1] संयुक्त परिवार की यह भव्यता सदस्यों के प्रगाढ़ पारिवारिक प्रेम एवं आपसी सामंजस्य को संगठित रखने में सहायक है।

प्रत्येक मनुष्य भावनात्मक सम्बन्धों के कारण अपने परिवार के लिए उत्तरदायित्व की भावना से बँधा रहता है। उत्तरदायित्व की भावना संयुक्त परिवार में शान्ति, व्यवस्था, अनुशासन एवं स्थायित्व का कार्य करती है। उपन्यास 'देवी : समयातीत गाथाएँ स्त्रियों की' में पुरानी पीढ़ी द्वारा संयुक्त परिवार के प्रति आस्था को अभिव्यक्त किया गया है। उपन्यास में बीजी, वह बुजुर्ग महिला है जो परिवार की अखण्डता में विश्वास रखती है। वह घर में बँटवारे का नाम लेना भी अपराध समान मानती है, ''बहुओं के आते ही बेटे बदलने लगे। वे झेंपे–झेंपे और बेचैन रहते। आखिर उन्होंने अपने दिलों की बात कह दी। बीजी क्रोध से उबल पड़ीं। परिवार का बँटवारा? लहू–लहू से अलग कैसे हो सकता है? लक्ष्मणजी जब घायल हुए तब रामजी ने क्या कहा था याद है– पत्नी तो और मिल जाएगी लेकिन माँ जाया भाई कहाँ मिलेगा? मुझे पता है, तुम किसके सिखावे में हो। ख़बरदार! मेरी लाश पर चूल्हे बँटेंगे।''[2] परिवार में बीजी की नसीहत पारिवारिक सदस्यों की मानसिकता को झंझोडती है, उन्हें परिपक्व बनाती है। उसके बेटे संयुक्त परिवार के

---

1 पाण्डे, मृणाल, पटरंगपुर पुराण, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1983, पृ०सं०–88

2 पाण्डे, मृणाल, देवी : समयातीत गाथाएँ स्त्रियों की, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1999, पृ०सं०–155

महत्त्व को समझ जाते हैं। बीजी के घर में पुनः समृद्धि का दौर लौट आता है। पाँचों भाई मिलकर काम करते, जिससे उनके खेत सोना उगलने लगे। उनकी बहुओं ने भी यह जान लिया था कि साथ रहने में ही भलाई है। अपने अंतिम समय में चारों तरफ अपने परिवार को जुटाकर प्रसन्नवदना बीजी बहुओं को पुत्रवती एवं सम्पन्न रहने का आशीर्वाद देती है।

मृणाल पाण्डे ने कहानी 'आततायी' में संयुक्त परिवार के प्रति आस्था व्यक्त करते हुए उसकी गौरवशाली परम्परा को इन शब्दों में उद्‌घाटित किया है, ''मलाबार को छोड़कर शेष सारे भारतवर्ष में दो हजार साल पहले भी पारिवारिक ढर्रा पितृानुवंशी ही था। यानी पिता ही घर–सम्पत्ति का मालिक, रखवाला, कर्त्त–धर्ता–भर्ता सब कुछ होता था। उस व्यवस्था में समाज की आधारभूत इकाई व्यक्ति विशेष नहीं, बल्कि यही होता था, जिसे हम आज सम्मिलित कुटुम्ब कहते हैं। इस समुदाय में सभी पारिवारिक सम्बन्ध सामूहिक होते थे, निजी नहीं।''[1] संयुक्त परिवार में कर्त्ता की भूमिका मुख्य होती है, ''क्योंकि संयुक्त परिवार में भिन्न–भिन्न उम्र, रुचि, विचारों के सदस्य एक साथ रहते हैं और परस्पर अन्तःक्रियाएँ करते हैं। इन अन्तःक्रियाओं के फलस्वरूप परिवार में अनेक समस्याएँ उठती रहती हैं। इन सभी समस्याओं के समाधान के लिए भी परिवार के कर्त्ता को अपनी भूमिका अदा करनी पड़ सकती है।''[2]

कहानी 'आततायी' में ताऊ जी, जो 85 वर्ष के हैं, सम्पूर्ण परिवार उनकी छत्र–छाया में पल रहा है। उनका बेटा नरेश और जर्मन बहू मांसाहारी हैं परन्तु वे अपनी बेटी मैना की शादी में शाकाहारी व्यंजनों को ही तरजीह देते हैं, ''खाने की चीजों की तालिका जब ताऊ जी की मुहर लगवाने भेजी गयी थी, तो उन्होंने निगाली से कश लेकर अपनी झागदार आवाज में साफ कहा था कि नरेश की बहू जर्मन हो या कि फर्मन, इस घर के चौके में अखाद्य न पका है, न पकेगा।''[3] सभी

---

1 पाण्डे, मृणाल, आततायी (कहानी–संग्रह : यानी कि एक बात थी), राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1990, पृ०सं०–14

2 अवस्थी, कमलेश, परम्परा और आधुनिकीकरण, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, सन्–2006, पृ०सं०–71

3 पाण्डे, मृणाल, आततायी (कहानी–संग्रह : यानी कि एक बात थी), राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा० लि०, नई दिल्ली, सन्–1990, पृ०सं०–145

परिवारजनों ने उनके निर्णय को सहर्ष स्वीकार किया। ताऊ जी का मानना था कि घर की मर्यादा सर्वोपरि है। मुखिया होने के नाते ताऊ जी का मुख्य उद्देश्य परिवार में सौहार्द का वातावरण सृजित करना है। कहानी में भरा–पूरा संयुक्त परिवार है, जो एकता के सूत्र में पिरोया हुआ है। नरेश द्वारा विदेश से लाये गये कैमरे से सम्पूर्ण परिवार एक साथ बैठकर फोटो खिंचवाता है। फोटो में दोनों भाई अगल–बगल में बैठते हैं, बहुएँ नीचे बैठी हुईं रिद्धि–सिद्धि सी प्रतीत होती हैं तथा ताऊजी बीच में बैठे रामचन्द्र जी की भाँति दिखते हैं। अतः लेखिका ने कहानी में परिवार की एकजुटता तथा आत्मीयता को सहृदयता से उभारा है।

मृणाल पाण्डे ने कहानी 'एक स्त्री का विदागीत' में भी संयुक्त परिवार का आदर्श रूप प्रकट किया है। वृद्धा सावित्री की बेटियाँ जब अपने मायके आती हैं तो उनकी भाभी सुषमा उन्हें पर्याप्त मान–सम्मान प्रदान करती है। सुषमा द्वारा भिन्न–भिन्न प्रकार के व्यंजन बनाये तथा परोसे जाते हैं, ''जीजी, एक और लो गर्म है!' 'हाय भाभी तुम तो खिला–खिलाकर मार डालोगी।' बड़ी ने गद्‌गद् होकर प्लेट भर ली, 'जभी तो यहाँ से जाते हुए हर बार दुगुनी होकर निकलती हूँ।' सब हँस पड़े। सावित्री ने मन–ही–मन हाथ जोड़कर भगवान को सर नवा दिया। हे प्रभो, बना रहे यह प्रेम। इसी से घरों में बरक्कत होती है, वर्ना और क्या है जिन्दगी में?''[1] सावित्री का खिलखिलाता खुशहाल परिवार वात्सल्य, सौहार्द, संगठन तथा ममता का सशक्त प्रमाण है।

कथाकार शिवानी के अनुसार, ''हमारी सहिष्णुता, प्रेम भावना, परिस्थितियों के साथ–साथ बदलती जा रही है। ऐसे में भिन्न रुचि, भिन्न संस्कारों की पीढ़ियों तक एक साथ सुख–शांति से रहना आकाश कुसुम का चयन ही है।''[2] शनैः शनैः समाज में व्यक्तिवादी दृष्टिकोण अधिक विकसित हो रहा है, फिर भी संयुक्त परिवार सामाजिक जीवन में समष्टिवादी आदर्शों को प्रकट करता हुआ एक मौलिक संस्था के रूप में दिखाई पड़ता है। संयुक्त परिवार सदैव स्नेह, दयालुता एवं सौहार्द के लिए प्रेरणात्मक रहे हैं, परन्तु समय के साथ इन भावों में द्वेष का पुट समाहित हो

---

1 पाण्डे, मृणाल, एक स्त्री का विदागीत (कहानी–संग्रह : बचुली चौकीदारिन की कढ़ी), राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1990, पृ०सं०–93

2 गौतम, अर्चना (डॉ०), शिवानी के उपन्यासों में सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना, कुनाल प्रकाशन, नई दिल्ली, सन्–2009, पृ०सं०–111

गया है। डॉ० रमेश कुंतल मेघ का मानना है, ''व्यक्तिगत सम्पत्ति का विकास हुआ, जिसने लोगों में विग्रह पैदा किया, कई दुर्निवार विसंगतियाँ पैदा कीं। अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की रक्षा के लिए व्यक्ति ने कबीले, राज्य और समाज से अपना सम्बन्ध तोड़ने के विकास–क्रम में परिवार की संयुक्तता से भी अपना नाता तोड़ना प्रारम्भ कर दिया। परिणामतः समष्टि के चिथड़े–चिथड़े हो गये।''[1] संयुक्त परिवार में बढ़ते तनाव एवं द्वेष के भी अनेक रूप मृणाल पाण्डे ने अपने कथा–साहित्य में प्रकट किये हैं।

'देवी : समयातीत गाथाएँ स्त्रियों की' उपन्यास के प्रकरण 'बड़ी अम्मा की गाथा' में घर की बुजुर्ग महिला 'बड़ी अम्मा' उम्र के ढ़लान पर भी अपने अधिकारों का लोभ संवरण नहीं कर पाती। घर की बहुओं पर नकेल कसना अपना परम कर्त्तव्य मानती है, ''एक बार सत्ता देने के बाद उनका मन रह–रहकर नियंत्रण के लिए हुड़कता – यही वे दिन थे जब कज्जल काले क्षोभ ने उन्हें अपनी लपेट में लिया। बेटे उन्हें अपने साथ लिवा लाए। लेकिन आँसू–भरी बहुओं ने बताया था कि पहाड़ों से उतरी बड़ी अम्मा के साथ रहना नर्क से कम नहीं था। बेटों की गृहस्थी में उन्हें लगता कि वे मेहमान–सी हैं। बेचैन, परेशान वे बेटे–बहुओं की शिकायतें करतीं। अगर परिवार चकरघिन्नी की तरह उनके चारों तरफ चक्कर न काटता रहे तो बड़ी अम्मा का मुँह फूल जाता। लोग उन्हें मिलने आते तो वे कहतीं कि वे थक जाती हैं, न आते तो उन्हें शिकायत रहती कि सब उन्हें भूल गए हैं। बड़ी अम्मा किसी हाल में खुश न रहतीं।''[2] अतः बड़ी अम्मा के मन में बढ़ती अविश्वास की भावना के कारण परिवार में अशांति फैल जाती है, जिससे पारिवारिक सम्बन्ध कसैले तथा तनावपूर्ण बन जाते हैं।

पारिवारिक सदस्यों के आपसी हितों में संघर्ष होता रहता है, विशेषकर स्त्रियों में सदैव छोटी–छोटी बातें बड़े झगड़े का रूप धारण कर लेती हैं। पारिवारिक कलहों का परिणाम पारिवारिक अशांति अथवा संयुक्त परिवार का विघटन ही होता

---

1 मेघ, रमेश कुंतल (डॉ०), आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण, अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, सन्–1969, पृ०सं०–109

2 पाण्डे, मृणाल, देवी : समयातीत गाथाएँ स्त्रियों की, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1999, पृ०सं०–59

है। श्री एन० घोष के शब्दों में, ''जिन दीवारों में संयुक्त परिवार के बुद्धिमान और प्रतिभाशाली व्यक्तियों को रहना पड़ता है, यदि उनसे प्रश्न किया जाए तो वे बड़ी करुण कथा कहेंगे। उन दीवारों ने कितने ही प्राणियों के अजस्त्र अश्रुप्रवाह देखे हैं; कितनों की दुःख व निराशा भरी ठंडी आहों को सुना है; वे दीवारें विफल हुए, फिर प्रारम्भ किये गये और पुनः विफल हुए अनेक संघर्षों की साक्षी हैं। वीर आत्माएँ किसी के आगे घुटने टेकना नहीं चाहतीं, उन दीवारों ने उन्हें अनिच्छा से घुटने टेकते देखा है।''[1]

मृणाल पाण्डे द्वारा रचित उपन्यास 'पटरंगपुर पुराण' में सास–बहू की आपसी खींचतान द्वेष का कारण बनती है। इन्दु के पिता की मृत्यु के पश्चात् उसकी माँ बिन्दु की गृहस्थी श्रीहीन हो गयी थी। अपने बेटे–बहुओं से उसकी अनबन थी। बिन्दु की छोटी बहू सदैव उसकी बात का विरोध करती थी, आमा बताती है, ''सुना, एक बार उसने सुना दिया सास को.....कि 'इजा! हमारे यहाँ इतने खटराग करती हो, जब इन्दु दिदी के घर जाती हो तो क्या उसके चपरासियों की बनायी चाय नहीं पीतीं तुम?' चमक गयी, सुना, बिन्दु।.....अंत में ऐसी हालत हो गयी कि रवि की बहू ने मालिक से साफ कह दिया कि या तो वह रहेगी घर में या सास।''[2] परिवार का परिवेश विषाक्त बन चुका था। घर के अन्दर–ही–अन्दर सगे भाई–बहनों में मकान, जमीन और रुपये–पैसे को लेकर लड़ाई–झगड़ा, खींच–खांच आरम्भ हो गई थी।

लेखिका की कहानी 'कैंसर' भी संयुक्त परिवार में उपजे द्वेष के अंकुर को मार्मिकता से उद्‌घाटित करती है। कहानी में, सुरजी एवं दामोदर की बड़ी–सी हवेली पारिवारिक सदस्यों में तनाव के कारण खाली हो गयी। सब एक–दूसरे से दूर हो गये, ''बउआजी के उठने के बाद ही हर चीज जैसे सिकुडनी शुरू हो गयी थी। देखते–देखते देवरों ने अपना–अपना हिस्सा समेटा और इधर–उधर जाकर अपनी गृहस्थियाँ सम्भाल ली थीं। ननद–ननदोई जो विलायत गये, वहीं के हो रहे। कुछ साल में लड़की–लड़कों के ब्याह हुए, तो वे अलग–थलग। उत्ती बड़ी हवेली

---

1 मुकर्जी, रवीन्द्रनाथ, भारतीय सामाजिक संस्थाएँ, सरस्वती सदन, दिल्ली, सन्–1975, पृ०सं०–317

2 पाण्डे, मृणाल, पटरंगपुर पुराण, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1983, पृ०सं०–91

भाँय–भाँय करती रह गयी थी।''[1] व्यक्ति की आत्मकेन्द्रिता तथा 'मैं और मेरा परिवार' की सीमित सोच ने संयुक्त परिवार में कलह को विस्तार दिया।

इस प्रकार लेखिका ने संयुक्त परिवार में सौहार्द, प्रेम तथा ईर्ष्या एवं द्वेष, दोनों रूपों को ही अपने पात्रों द्वारा बखूबी उभारा है।

4.2 एकाकी परिवार में सहयोग एवं विरोध

पिछले कुछ वर्षों में ऐसी सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक परिस्थितियाँ एवं परिवर्तन हमारे भारतीय समाज में उत्पन्न हुए हैं जिनके कारण संयुक्त परिवार विघटित हुए हैं। परिणामस्वरूप एकाकी परिवारों की संख्या में वृद्धि हुई है। एकल परिवारों की भी अपनी समस्याएँ हैं, परन्तु इन सबके बावजूद भी व्यक्ति अलग रहना पसन्द करता है। एकाकी परिवार में व्यक्ति को अधिक स्वतंत्रता प्राप्त होती है। यह स्वतंत्र सामाजिक इकाई सहयोग के आधार पर निर्मित होती है। इस प्राथमिक समूह की छोटी–सी परिधि में एक–दूसरे पर पूर्णतया आश्रित रहने के कारण पारस्परिक 'हम भावना' का दृष्टिकोण प्राप्त होता है। एक–दूसरे के इतने घनिष्ठ सम्पर्क में रहने तथा एक–साथ दुःख–सुख बांटने के कारण उसकी एकता घनीभूत हो जाती है और भावनात्मक बन्धन मजबूत हो जाते हैं। प्रत्येक परिवार आगामी पीढ़ी को इतने यथेष्ठ लक्षण संचरित कर देता है कि वह पहचान में आता रहता है।

मृणाल पाण्डे ने अपनी कृतियों में इस बात पर विशेष बल दिया है कि सहकारिता की वृत्ति मानवीय विकास का प्रामाणिक लक्ष्य है। लेखिका के 'अपनी गवाही' उपन्यास में पत्रकार कृष्णा के माता–पिता के आपसी सहयोगपूर्ण सम्बन्ध दिखाई देते हैं। दोनों पति–पत्नी ने अपना जीवन सम्मानपूर्वक व्यतीत किया है। पति के बीमार होने पर, ''पार्वती वहीं कोने में एक खाट पर सोती थी और जरा सी आवाज आते ही उठ जाती थी। वह बार–बार मिलने–जुलने वालों और डॉक्टरों से कहा करती थी, 'मैं यह सब रोग से लड़ने में उनकी मदद के लिए करती हूँ और

---

1 पाण्डे, मृणाल, कैंसर (कहानी–संग्रह : यानी कि एक बात थी), राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1990, पृ०सं० 122–123

काश मैं और अधिक कुछ कर सकती।''[1] इसी उपन्यास में जब कृष्णा का परिवार आर्थिक संकट से गुजर रहा था तब उसे अपने पति का सहयोग ही पर्याप्त दिखाई देता है, ''उनका घर शान्त और कोलाहल से मुक्त था। और जब वे दोस्त न होने, पैसे न होने या अलग–थलग होने की बातें करते भी थे तो अन्दर से कृष्णा खुद को बहुत सुरक्षित महसूस करती थी कि उसके पास पति का साथ है, और कोई ऐसी कीमती चीजें भी नहीं हैं जिनकी हिफाजत की चिन्ता करनी पड़ती।''[2] इन पंक्तियों द्वारा लेखिका ने स्पष्ट संकेत दिया है कि दम्पती का आपसी सहयोग एवं समझ जटिल तथा विपरीत परिस्थितियों में जीवन की प्रत्येक चुनौती का सामना धैर्य से करने में समर्थ है।

समानता के आधार पर बने परिवार में पति–पत्नी दोनों की समान सत्ता है। जब बच्चे बड़े हो जाते हैं तो वे भी समानता के आधार पर माता–पिता से व्यवहार करने लगते हैं, फलतः परिवार में सहभागिता का परिवेश तैयार हो जाता है। कहानी 'कगार पर' में विष्णु का अपने परिवार के प्रति सहयोगात्मक रवैया है, ''सो हर इतवार को वह सुबह उठता है और अपने बेटों को नाश्ता बना, खिला, बाहर भेजकर, कुर्सी पर बैठ इतवारी अखबार जंगी स्पेशल संस्करण पढ़ना चालू कर देता है।''[3] विष्णु की पत्नी मिली भी परिवार के प्रति निष्ठावान है। वह आधुनिक विचारों की होते हुए भी वैयक्तिक स्वतन्त्रता से अधिक पारिवारिक दायित्वों को प्राथमिकता देती है। विष्णु भी इस बात को स्वीकार करता है कि ''मिली उसकी तुलना में बच्चों के लिए बहुत सुलझी हुई माँ है। बचपन से उसने दोनों की आदतों को नियत कर रखा है– खाने का, सोने का, सबका एक वक्त है, चाहे घर में मेहमान हों, या उनको बाहर जाना हो, उसमें खलल नहीं पड़ता।''[4] मिली तन्मयता से गृहकार्यों में व्यस्त रहती है। वह खाली समय में बागवानी का कार्य करती है। उसके बगीचे में गुलाब के फूल खूब लहलहा रहे हैं। पति–पत्नी में कर्त्तव्यों के सामंजस्य से परिवार समृद्ध एवं सम्पन्न बना हुआ है। परिवार में पति–पत्नी द्वारा एक–दूसरे को दिया

---

1 पाण्डे, मृणाल, अपनी गवाही, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–2003, पृ०सं०–67

2 यथावत्, पृ० सं०–103

3 पाण्डे, मृणाल, कगार पर (कहानी–संग्रह : यानी कि एक बात थी), राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1990, पृ०सं०–92

4 यथावत्,, पृ० सं०–96

जाने वाला सहयोग मानवीय सम्मान का ही अंश है, ''यदि मिलजुल कर पति–पत्नी दोनों घर और बाहर के क्षेत्रों में कार्य करते हैं, तो परिवार के जीवन स्तर के साथ–साथ परिवार के प्रत्येक सदस्य में आत्मविश्वास के लक्षण की अधिक सम्भावनाएँ दीखती हैं।''[1]

एकाकी परिवार में एक ओर प्रेम, सहयोग एवं सामंजस्य के मूल्य प्रतिबिम्बित हुए हैं वहीं विरोध का स्वर भी प्रखर होता हुआ प्रतीत होता है। जिसे मृणाल पाण्डे ने अपने साहित्य में उभारा है। मानव–जीवन में प्रकट होने वाले छोटे–छोटे मतभेद शीघ्र ही विरोधाभास मे परिवर्तित हो जाते हैं।

उपन्यास 'रास्तों पर भटकते हुए' में मंजरी की माँ मंजरी द्वारा बार–बार नौकरी छोड़ दिये जाने से बहुत नाराज होती है, वह उसे बहुत समझाती है। परन्तु मंजरी उनके विचारों से असहमत है। दोनों के मध्य वैचारिक टकराव उत्पन्न हो जाता है, ''तू अब भी टिककर अपनी जिन्दगी का कुछ क्यों नहीं करना चाहती? अपने पैर तले की जमीन पक्की करने से इतना बैर क्यों है तुझे?''[2] मंजरी अपनी माँ के प्रश्न का यही जवाब देती है कि वह हमेशा उसे ही घर लौटने पर ग्लानि और शर्म महसूस कराने पर तुली रहती है। अपने बहू–बेटे से तो कुछ नहीं कहती। माँ हताश हो उठती है, ''मेरी ही कोख में खोट होगी कुछ जो अपने कोखजायों को भी मेरी बातें नहीं सुहाती अब।''[3]

माता–पिता और संतान के बीच विभिन्न परिस्थितियों में विचारों तथा मूल्यों में समन्वय नहीं हो पाता, कहीं पर संघर्ष की स्थिति है, कहीं सीधा टकराव तथा आंतरिक अलगाव है। उपन्यास 'विरुद्ध' में पिता अपनी बेटी के नये दृष्टिकोण को अपने अधिकार भाव के कारण ग्रहण नहीं करता और उपेक्षाभाव बरतता है। रजनी की बहन बिल्लो नरेश नामक लड़के से विवाह करना चाहती है। रजनी के पापा शादी के पक्ष में नहीं थे। रजनी के शब्दों में, ''नरेश भाई उम्र में तो आठेक साल

---

1 गोस्वामी, क्षमा, परिवार में सौहार्द, ज्ञान भारती प्रकाशन प्रा० लि०, नई दिल्ली, सन्– 2005, पृ०सं०–80

2 पाण्डे, मृणाल, रास्तों पर भटकते हुए, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा० लि०, नई दिल्ली, सन्–2000, पृ०सं०–50

3 यथावत्, पृ०सं०–51

बड़े थे ही तिस पर खासे खिलंडरे रईसज़ादे के रूप में मशहूर थे। पर बिल्लो की ज़िद इस विरोध से और भी पुख्ता होती चली गई थी। रोज रात खाने की मेज़ पर वे नाटकीय संवाद दुहराए जाते थे जिनकी शुरूआत दोस्ताना बहसों और अन्त माँ के रो पड़ने पर या पापा के कुर्सी खिसकाकर दनादन बाहर निकल जाने से होता था।''[1] द्वन्द्व के कारण परिवार में तनावपूर्ण स्थिति पैदा हो जाती है। वाद–विवाद के फलस्वरूप ही ''बिल्लो को अपने कौशार्य–संचित आक्रोश और किताबी भाषा को उगलने का मौका मिला था, पापा को मर्दाने प्रतिरोध के जोशीले इज़हार का और माँ? वह तो जैसे आँसुओं और हिस्टीरिया के कगार पर खड़ी सदा एक ट्रैजेड़ी की प्रतीक्षा करती रहती थीं।''[2]

'देवी : समयातीत गाथाएँ स्त्रियों की' उपन्यास में ललिता के दादाजी एवं पिता के मध्य वैचारिक मतभेद हैं, जिसके कारण उसके पिता घर छोड़कर विदेश चले जाते हैं। दादाजी अपने पुत्र को पोती ललिता से पत्र लिखवाते हैं। जिसमें वे अपनी यही इच्छा व्यक्त करते हैं कि उनका बेटा उनकी इस उम्र के ढलान पर, किसी मेम से ब्याह करके और अपमान मत करवाये। उनकी यही राय है कि वह उनके अंतिम समय में भी उनसे दूर ही रहे। एक दिन जब उसकी अपनी संतान उसे ऐसा ही दुःख पहुँचाएगी जैसा उसने उन्हें पहुँचाया है तब उसे उनकी बात अवश्य याद आयेगी।

कहानी 'कोहरा और मछलियाँ' में रति और बानो दोनों बहनें अपनी माँ के अत्याधुनिक व्यवहार का विरोध करती हैं। माँ की आँखों पर प्रसिद्धि की भूख का कोहरा इस प्रकार घना होकर छाया हुआ है कि उसे परिवार का टूटना–दरकना भी दिखाई नहीं देता। दोनों बहनें घर से भाग जाना चाहती हैं ''बानो तो हमेशा ही कहती थी कि रति 'एनीथिंग जस्ट टु गेट अवे फ्रॉम ममीज स्टैग्नेण्ट डेन' (मम्मी की इस दूषित माँद से बच भागने को मैं कुछ भी कर सकती हूँ)। उसे याद है उस

---

1 पाण्डे, मृणाल, विरुद्ध, सरस्वती विहार, नई दिल्ली, सन्–1977, पृ०सं०–97

2 यथावत्, पृ०सं०–97

दिन का माहौल, घर में डिनर–पार्टी थी। दोनों बहनें जान–बूझकर शाम को बाहर चली गयीं – या भाग ही निकली थीं।''[1]

'चिमगादड़ें' कहानी भी दोनों बहनों – सोनिया तथा मारिया एवं उनकी माँ के मध्य विरोध को प्रदर्शित करती है। माँ बीमार रहती है। एक दिन माँ के पेट में गैस का दर्द होता है, तब मारिया एवं उसकी माँ में आरोप–प्रत्यारोप का दौर आरम्भ हो जाता है, ''ममा, बात तो यह है कि जब तक तू अपनी जुबान को कंट्रोल नहीं करेगी, कोई डॉक्टर–हकीम तेरे मर्ज की दवा नहीं कर सकता।' ..... 'तेरा..... ..... सोनिया का क्या है। तुम दोनों के लिए मैं बस एक जिंदा लाश–भर हूँ।''[2] अतः दोनों के विरोध का यह हृदयहीन स्वर परिवार में जहर घोल देता है।

आधुनिकता की दौड़ में माता–पिता अपने बच्चों को अपने योग्य स्वयं वर तलाशने की स्वतंत्रता दे रहे हैं परन्तु ठोस निर्णय शक्ति के अभाव में बच्चे अपने जीवन तथा सम्बन्धों में संतुलन नहीं बना पाते, परिणामस्वरूप उनका रोष माता–पिता के प्रति विरोध स्वरूप फूटता है, 'शरण्य की ओर' कहानी में डॉली शहर के हॉस्टल में पढ़ रही है। उसकी सहेली विजया उससे घर जाने के विषय में पूछती है तब उसका यही उत्तर होता है, ''मैं तो घर जाने की बजाय ये दो दिन यहीं काट लूँगी। एक तो जाते ही ममी पूछेंगी कि नसीम कौन है, कैसा है..... मैं क्या बताऊँगी कि अभी तो कुछ भी पक्का नहीं है..... फिर उनकी वही नसीहतें कि तुम्हें जल्दी ही अपने लिए कोई ढूँढ़ लेना चाहिए.... बड़ी उम्र की शादी.... जैसे कि मैं हाथ बढाऊँगी, तो कोई लड़का मेरी हथेली पर टपक पड़ेगा.....।''[3]

पति–पत्नी का मानसिक स्तर पर मिलाप न होना विरोधों को जन्म देता है। कहानी 'कगार पर' में विष्णु और मिली का बड़ा बेटा मैथ्यू सिगरेट पीने लग गया। मिली, विष्णु में इस विषय पर तकरार बढ़ने लगती है, ''मैथ्यू को मैंने दो–तीन बार सिगरेट पीते हुए देखा है। उसे अभी मालूम नहीं कि मुझे पता है, पर तुम क्या सोचते हो?'..... 'मुझसे क्या पूछना है? जो तुम्हारी माँ या डॉक्टर स्पॉक कहते

---

1 पाण्डे, मृणाल, कोहरा और मछलियाँ (कहानी–संग्रह : यानी कि एक बात थी), राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1990, पृ०सं०–12

2 पाण्डे, मृणाल, चिमगादड़ें (कहानी–संग्रह : यानी कि एक बात थी), राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1990, पृ०सं०–17

3 पाण्डे, मृणाल, शरण्य की ओर (कहानी–संग्रह : यानी कि एक बात थी), राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1990, पृ०सं०–39

हैं, करो।' एक क्षण को मिली का चेहरा फक पड़ा, फिर तमतमा आया।''[1] अतः वैचारिक मतभेद के कारण एकाकी परिवार में तनाव और गहरा जाता है।

समग्रतः कहा जा सकता है कि लेखिका ने एकाकी परिवार में सहयोग एवं परस्पर विरोध का अंकन स्वाभाविकता से अपने कथा–साहित्य में किया है।

4.3 स्नेहपूर्ण पारिवारिक सम्बन्ध

पारिवारिक सम्बन्धों में पति–पत्नी, माता–पिता एवं संतान, भाई–बहन आदि के परस्पर सम्बन्ध सम्मिलित किये जा सकते हैं। भौतिकतावादी युग में, आज भी पारिवारिक सम्बन्ध स्नेह तथा त्याग की ऊष्मा से आप्लावित दिखाई देते हैं। रचनाकार मृणाल पाण्डे ने भी अपने कथा–साहित्य में स्नेहपूर्ण पारिवारिक सम्बन्धों की सुन्दर अभिव्यक्ति की है, जिससे इन सम्बन्धों की महत्ता एवं सार्थकता स्वतः परिलक्षित होती है।

पारिवारिक सम्बन्धों में व्यक्ति का तन और मन दोनों ही गहरे जुड़े होते हैं। परिवार के एक सदस्य का दूसरे के निजी जीवन से पूर्णतः असम्पृक्त रहना असम्भव नहीं तो दुःसाध्य अवश्य है। उपन्यास 'हमका दियो परदेस' माँ–बेटी तथा बेटी की संतानों के स्नेह सम्बन्धों को प्रगाढ़ता से उकेरता है। टीनू–दीनू अपनी माँ के साथ जब छुट्टियाँ बिताकर नानी के घर से वापिस जाती हैं तब वियोग के पलों में घर में उदासी छा जाती है। टीनू के शब्दों में, ''नानी खिड़की के बाहर देख रही थीं। वह सीने पर बाँहें टिकाए हमें जाते देख रही थीं, उनके होंठ कसकर बन्द थे और आँसू उनके चश्में में अटके थे।''[2]

सम्बन्धों के आत्मीय अनुभव को 'अपनी गवाही' उपन्यास में भी व्यक्त किया गया है। माँ पार्वती अपनी बेटी कृष्णा को पारिवारिक जीवन में सम्बन्धों के महत्त्व एवं स्थायित्व को समझाती है। पार्वती का मानना है कि पारिवारिक सम्बन्ध तभी टिकाऊ रहते हैं जब उनमें कम–से–कम दो चीजें शेष हों – आज्ञाकारिता और निष्ठा। कृष्णा का पत्रकारिता का जीवन बेहद व्यस्त है। वह अपनी प्रवासी बेटियों को पर्याप्त समय नहीं दे पाती है। उसे जब इस बात का अहसास होता है तब वह

---

1 पाण्डे, मृणाल, कगार पर (कहानी–संग्रह : यानी कि एक बात थी), राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1990, पृ०सं०–100

2 पाण्डे, मृणाल, हमका दियो परदेस, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्– 2001, पृ०सं०–33

अपनी बेटियों को पत्र लिखकर अपना अपार स्नेह इन शब्दों में व्यक्त करती है, ''तुम दोनों हर पल मेरे जितनी पास हो उतनी ही दूर भी। तुम्हारी याद हर पल आती है। तुम्हें बाँहों में भरने, तुम दोनों के माथे पर, हाथों पर चुम्बन लेने, तुम्हारे पैरों में बेबी ऑयल की मालिश करने का मन होता है। तुम्हें वे कहानियाँ फिर से सुनाने का मन होता है जो तुम्हें बचपन में बाल काढ़ते हुए, सर्दियों की धूप में बैठे हुए सुनाती थी। और मैं तुम्हें अब कैसी–कैसी हैरत–भरी कथाएँ सुना सकती हूँ। तुम दोनों तो इतनी दूर चली गई हो और कथाएँ हैं कि मेरे दिल के पास हैं, बोझ सी बनी हुईं।.....जब तुम दोनों पैदा हुईं और तुम्हें दूध पिलाने का अवसर आया तो बोतल की जरूरत नहीं हुई। दूध की तो धारा वैसे ही फूट पड़ी थी।.....घर आ जाओ। अम्मा तुम्हें बहुत प्यार करेगी, हर तरह से हिफाजत करेगी।''[1] कृष्णा का अपने बच्चों से यह जुड़ाव भावनात्मक है। प्रायः हमारे सामाजिक तथा पारिवारिक परिवेश में बच्चों को परिवार से सम्बन्धित विषयों को बताने से परहेज किया जाता है। कृष्णा के अनुसार यह उचित नहीं है, उसका मत है, ''बच्चे परिवार का इतिहास जानें इसमें गलत क्या है! उन्हें भी मालूम रहना चाहिए कि बड़े–बुजुर्ग भी कैसी–कैसी गलतियाँ कर सकते हैं और हम में से कोई भी जन्म से ही एकदम परफेक्ट माँ–बाप बनकर पैदा नहीं होता।''[2] कृष्णा का यह विचार तर्क की कसौटी पर खरा उतरता है क्योंकि पारिवारिक अनुभव उनके लिए मार्गदर्शक तथा भावी निर्णयों को दिशा प्रदान करने में सहायक तो होते ही हैं साथ–ही–साथ पारिवारिक सम्बन्धों को सार्थक बनाने मे भी समर्थ हैं।

स्त्री एवं पुरुष के मध्य प्राकृतिक एवं सहज आकर्षण है। परिवार की प्रगति हेतु पति–पत्नी के सम्बन्धों का मधुरतम होना नितांत अनिवार्य है। प्रेमपूर्ण दाम्पत्य जीवन की मधुरता का अंकन विद्यानिवास मिश्र ने आलेख 'नारी वर्ष बनाम नारी जीवन' में करते हुए लिखा है, ''दाम्पत्य सम्बन्ध में बसन्त का उद्दाम या वर्षा का उद्दाम निर्बंध रूप ही नहीं है, वह शरद् की शुभ्रता भी है और परस्पर सम्बन्ध की

---

1 पाण्डे, मृणाल, अपनी गवाही, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा० लि०, नई दिल्ली, सन्–2003, पृ० सं०–127

2 यथावत्, पृ०सं०–10

ऐसी अतल गहराई है जिसमें बातचीत के लिए इशारों की जरूरत नहीं होती। पास न भी रहें तो एक–दूसरे के रहने का अहसास ही काफी है जैसे शरद् की रात में चन्द्रमा और रात एक–दूसरे में घुल–मिल जाते हैं, हंस और स्फटिक के समान निर्मल सरोवर एक–दूसरे में मिल जाते हैं, वैसे ही दाम्पत्य सम्बन्ध विश्वास का अनन्त प्रसार बन जाता है।''[1]

मृणाल पाण्डे द्वारा रचित कहानी 'कगार पर' में विष्णु तथा मिली, दोनों पति–पत्नी के मधुरतम सम्बन्ध हैं। ''शादी के बाद वे दोनों एथेंस गये थे। संतरों से लदा हुआ, ऐन चौराहे पर वह बगीचा था। संतरे छीलती मिली ने एक मीठी कतली उसके मुँह में डाली थी– 'अब घंटों हम लोगों से संतरे की खुशबू आयेगी, है न?' 'नहीं।' उसने भेद–भरे अंदाज से कहा था और दोनों हँस पड़े थे।''[2] दम्पती के ये मीठे क्षण उनके जीवन को प्रसन्नता से भर देते हैं।

माता–पिता, बच्चों के पालन–पोषण को अपनी नैतिक जिम्मेदारी मानते आए हैं। दोनों में से माँ की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है। 'व्यक्तिगत' कहानी में माँ–बेटे का व्यवहार मित्रवत है। माँ अपने बेटे से हमेशा बराबरी के लहजे में बात करती थी, जैसे किसी हम–उम्र के साथ की जाती है। माँ–बेटे में घनिष्ठ सम्बन्ध था। ''हालांकि माँ ने कभी साफ–साफ अपनी पसंदगी–नापसंदगी जाहिर नहीं की, पर खुद–ब–खुद न जाने कब दोनों के दरम्यान एक बहुत ही नाजुक सूत्र ऐसा आ जुड़ा था कि उसकी हल्की–से–हल्की तरंग से भी दोनों साथ–साथ स्पंदित होने लगते थे।''[3] माँ–बेटे का यह प्रगाढ़ सम्बन्ध सम्बन्धों की नयी परिभाषा तय करता प्रतीत होता है। कहानी 'हमसफर' भी माँ–बेटे के स्नेहशील सम्बन्ध पर आधारित है। माँ विधवा है। वह अपने बेटे को स्वाभिमानी बनाना चाहती है। यही कारण है कि रेलगाड़ी में अपने बेटे को दूसरों से दालमोठ माँगकर खाने पर वह उसे तमाचे लगाती है, पीटती है क्योंकि वह नहीं चाहती कि उसका बच्चा किसी की दया पर

---

1 मिश्र, विद्यानिवास (संपा०), साहित्य अमृत (पत्रिका), प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, जुलाई 2001, पृ०सं०–3

2 पाण्डे, मृणाल, कगार पर (कहानी–संग्रह : यानी कि एक बात थी), राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1990, पृ०सं०–106

3 यथावत्, पृ०सं०–33

जीवित रहे परन्तु बाद में, ''जभी उसकी नजर बच्चे के फीके पीले गाल पर पड़ी। उसकी बेड़ौल खुरदुरी उँगलियाँ पागलों की नाईं वहाँ फिरने लगीं, जहाँ आँसू का एक कतरा ओस की बूँद की तरह अटका पड़ा था। उसे लगा मानो अब उसका हृदय प्यार और शोक के थपेड़ों से विदीर्ण हो जायेगा।''[1]

'एक स्त्री का विदागीत' कहानी में माँ का अपने बहू–बेटे के साथ समधुर सम्बन्धों का अंकन हुआ है। बहू–बेटा अपनी माँ का सदैव ध्यान रखते हैं। माँ सावित्री अपनी बेटियों को बताती है, ''कैसे मुन्ना और सुषमा, जाड़े आये नहीं कि मेवों के थैले के थैले लाकर पकड़ा जाते हैं, कि तुम खाओ, अरे मैंने कहा, मैं बुड्ढी–ठुड्डी अब क्या खाऊँ? ऊपर से मार टॉनिक की शीशियाँ पर शीशियाँ ले आयेंगे। देखो तो सही।''[2] अल्मारी का पूरा खाना दवा की शीशियों से भरा हुआ था। अतः परिवार में उत्तरदायित्व की भावना सम्बन्धों को प्रगाढ़ बनाती है।

संयुक्त परिवार में चाची तथा भतीजे के स्निग्ध सम्बन्धों का प्रदर्शन भी 'आततायी' कहानी में दृष्टिगत होता है। भतीजा नरेश अपनी जर्मन पत्नी के साथ भारत लौटता है तो चाची उसके पसन्द का खाना बनाती है। वह नरेश के लिए विशेष तौर पर मूँग का हलवा तैयार करती है। उसे लगता है कि विदेश में उसे इस प्रकार का हलवा एवं भारतीय व्यंजन नहीं मिलते होंगे। अतः नरेश के प्रति उसकी चाची का प्रेम माँ के स्नेह की भाँति निश्छल है।

भारतीय परिवारों में 'दादा–दादी' और 'पोता–पोती' के परस्पर प्रेमपूर्ण सम्बन्धों के दृश्य प्रायः दृष्टिगोचर होते हैं। 'बचुली चौकीदारिन की कढ़ी' कहानी दादी–पोते के स्नेह का ऐसा ही एक जीवन्त उदाहरण प्रस्तुत करती है। गरीब बचुली चौकीदारिन का अनाथ पोता सुरिया गुर्दे की गम्भीर बीमारी से पीड़ित है। वह अपनी दादी से माँग करता है कि, ''कढ़ी खाऊँगा आमा, कढ़ी–भात। पीली,

---

1 पाण्डे, मृणाल, हमसफर (कहानी–संग्रह : बचुली चौकीदारिन की कढ़ी), राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा० लि०, नई दिल्ली, सन्–1990, पृ०सं०–156

2 पाण्डे, मृणाल, एक स्त्री का विदागीत (कहानी–संग्रह : बचुली चौकीदारिन की कढ़ी), राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा० लि०, नई दिल्ली, सन्–1990, पृ०सं०–92

खट्टी–खट्टी कढ़ी बना के उसमें अखोड़ (अखरोट) बरोबर पकौड़ी भी डाल दे।''[1] बचुली पोते की इच्छा पूरी करने के लिए घर–घर जाकर तेल, बेसन, छाछ आदि का प्रबन्ध करती है परन्तु कढ़ी–भात बनने के बाद जैसे ही वह परोसने के लिए उठती है तो उसका पैर धोती में अटक जाता है और कढ़ी नीचे गिर जाती है। वह अपने हिस्से का खाना सुरिया को परोस देती है तथा स्वयं पेट भरे होने का ढोंग उसके समक्ष करती है और उसे बताती है कि आज उसका पेट बहुत भर गया है। वह जिस भी घर में गयी सबने उसे खाने के लिए कुछ–न–कुछ दे दिया और इस उम्र में बुजुर्गों को खाने का लालच इतना नहीं होना चाहिए।

उपन्यास 'देवी : समयातीत गाथाएँ स्त्रियों की' में दादा–पोती का सम्बन्ध आत्मीय, सहज एवं ईमानदारी से पूर्ण है। अस्सी बरस के दादा लगभग अंधे हो चले थे। प्रत्येक सुबह नाती–पोतों में सबसे दुलारी ललिता को पास बुलाकर वे उसके मधुर कंठ से संस्कृत काव्य का पाठ सुनते। ललिता के स्वर के उतार–चढ़ाव एक आदिम वेदना से उपजे ज्ञान को साकार करते, दादा निश्चल सुनते रहते थे। अतः दादा–पोती का यह सम्बन्ध, रिश्तों की सार्थकता को सजीव बनाता है।

मृणाल पाण्डे स्वस्थ पारिवारिक सम्बन्धों की पक्षधर रही हैं। उन्होंने अपने लेखन में स्नेहपूर्ण पारिवारिक सम्बन्धों का स्वाभाविक चित्रांकन किया है।

4.4 पारिवारिक सम्बन्धों में खोखलापन एवं संवेदनहीनता

मनुष्य अपने जीवन में जिन सम्बन्धों का सृजन करता है, उन सम्बन्धों की मानसिक तैयारी उसे पारिवारिक जीवन में ही करनी पड़ती है। परम्परागत समाज का सांस्कृतिक बोध परिवार को ही केन्द्र मानकर विकसित होता था। धार्मिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक परिवेश पारिवारिक जीवन मूल्यों में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाता है। परिवर्तित परिवेश में परम्परागत धारणाएँ खोखली सिद्ध हो रही हैं। पारिवारिक स्तर पर सम्बन्धों के मूल्य बदल गये हैं, इस संदर्भ में डॉ० टी० मोहन सिंह का कथन उल्लेखनीय है, ''परिवार में कतिपय व्यक्तियों का परस्पर व्यवहार,

---

1 पाण्डे, मृणाल, बचुली चौकीदारिन की कढ़ी, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1990, पृ०सं०–199

आचरण, कृतज्ञता, संवेदना आदि भाव अन्य संस्थाओं की अपेक्षा अधिक पुष्ट एवं रागात्मक सूत्र में ग्रन्थित होते हैं। पारिवारिक सम्बन्धों ने व्यक्ति के जीवन को सुखमय या दुःखमय बनाने में जबरदस्त सहयोग दिया है।''[1] आज मनुष्य परम्परा से विच्छिन्न तथा मानव–सम्बन्धों के मोहपाश से मुक्त हो रहा है। ''नितांत अपने निकटतम सम्बन्ध भी पराये हो गये हैं। पारिवारिक सम्बन्धों का ठंडापन और ऊष्मा का अभाव ही बदलाव कहा जा सकता है। जिससे परिवार में रहकर भी उसे लगता है कि परिवार उसका नहीं है, क्योंकि सब अपना–अपना जीवन जी रहे हैं।''[2] समकालीन परिवेश में कथाकार का संवेदनशील मस्तिष्क समाज के बदलाव के इन सूक्ष्म सूत्रों को पकड़ सकता है। मृणाल पाण्डे ने मानवीय सम्बन्धों के खोखलेपन तथा क्षीण संवेदनाओं को भी कथा–साहित्य में उभारा है।

दिखावटी सामाजिक सम्बन्धों के परिवेश में 'विरुद्ध' उपन्यास की रजनी कहीं भी किसी भी रूप में स्वयं को ढाल नहीं पाती है, उसे सम्बन्ध निरर्थक प्रतीत होते हैं, ''कैसे हम सब एक झूठे अभिमान की ओट में रिश्तों का अपनत्व भुरभुराता हुआ देखते जाते हैं और जब तक कुछ करने लायक इच्छा समो पाते हैं, दूरियाँ अकाट्य हो चुकती हैं।..... उसके भीतर भी कुछ तन–सा गया। हर बार घर लौटने का मतलब है एक सामाजिक परेड। इससे मिल लेना, उसके घर हो आना, उन्हें फोन कर लेना किसलिए?''[3] अतः न चाहते हुए भी सम्बन्धों की औपचारिकता को निभाने की विवशता रजनी के मन में असंतोष को उभारती है।

सम्बन्धों में शुष्कता के अनेक कारण हैं परन्तु जब उनमें गरमाहट ही न रहे तो उन्हें निभाने का कोई औचित्य ही नहीं रह जाता। 'हमका दियो परदेस' उपन्यास में टीनू, परिवार में सदस्यों के व्यवहार का निरीक्षण करती है तथा उसे यह ज्ञात होता है कि सब बड़े लोग वास्तव में भूत होते हैं जो दिन में दादा, माँ और बाबू के चेहरे लगा लेते हैं और रात को बत्ती बुझते ही चेहरे उतार देते हैं।

---

1 सिंह, टी० मोहन (डॉ०), साठोत्तर हिन्दी उपन्यास : प्रतिपाद्य और शिल्प, दक्षिणांचलीय साहित्य समिति प्रकाशन, हैदराबाद, सन्–1987, पृ०सं०–80

2 अरोड़ा, ज्ञानवती (डॉ०), समसामयिक हिन्दी कहानी में बदलते पारिवारिक सम्बन्ध, सूर्य–प्रकाशन, दिल्ली, सन्–1989, पृ०सं०–106

3 पाण्डे, मृणाल, विरुद्ध, सरस्वती विहार, नई दिल्ली, सन्–1977, पृ०सं०–75, 80

सम्बन्धों में व्याप्त भावात्मक कमी को टीनू–दीनू अपने ननिहाल जाकर भी महसूस करती हैं। उनके ननिहाल पहुँचने पर सबके चेहरों पर उदासी छा जाती है। उनका वहाँ आना किसी को भी नहीं सुहाता। टीनू–दीनू को तभी अहसास हो जाता है कि इस बार तो वे यहाँ गलत ही आए, उन्हें नहीं आना चाहिए था। दीनू अपने कानों से यह बात सुनती है कि उसके मामा का लड़का अनु उनके आने से बेहद दुःखी है। उसे यह अच्छा नहीं लगता कि छुट्टियाँ शुरू होते ही उसकी बुआएँ चार–चार बच्चों को लेकर आ धमकती हैं। वे कभी भी छुट्टियाँ चैन से बिताने नहीं देतीं। बेटी का बच्चों के साथ मायके आना नानी को भी अखरता है, ''बिना माँ की तरफ देखे नानी खास किसी की तरफ इशारा किए बिना कहती हैं कि जैसे टोस्ट दोनों तरफ से बराबर सिका होने पर ही मजा देता है, इसी तरह ब्याही बेटियाँ भी तभी शोभा देती हैं जब वे अपने घरों में भी उतना ही वक्त रहें जितना दूसरों के घरों में रहती हैं।''[1]

सम्बन्धों में ऊब या अलगाव आज नये युग की देन है वरना भाई–बहन को एक–दूसरे से ऊब हो, बहुत विचित्र प्रतीत होता है। उपन्यास 'रास्तों पर भटकते हुए' में लेखिका ने मंजरी तथा उसके भाई के खोखले सम्बन्ध एवं कमजोर पड़ती स्नेह भावना को व्यक्त किया है। ''भाई से अब मैं साल में सिर्फ तीन बार मिलती हूँ – भाई दूज, रक्षाबन्धन और माँ की बरसी पर। न मैंने टीका–राखी की ठकुरसुहाती–भरी परम्परा पूरी की है, न उसने लेने–देने की। सहोदर होने के नाते हम एक–दूसरे की इच्छा और गरिमा का कम–से–कम इतना तो सम्मान कर ही सकते हैं।''[2] रिश्तों का यह ठण्डापन निश्चित ही व्यक्ति के व्यक्तित्व को कुण्ठित तो करता ही है कहीं–न–कहीं उसे समाज से अलग भी करता है। तीज–त्योहारों की एक परम्परा जिसके माध्यम से रिश्तों को जीवित रखा जा सकता है, उसके प्रति भी उदासीनता समा गयी है।

प्राचीन काल में व्यक्ति पारिवारिक सम्बन्धों के महत्त्व से परिचित था, परन्तु आज वह सम्बन्धों को प्राथमिकता नहीं देता। 'पटरंगपुर पुराण' उपन्यास में आमा

---

1 पाण्डे, मृणाल, हमका दियो परदेस, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–2001, पृ०सं०–113

2 पाण्डे, मृणाल, रास्तों पर भटकते हुए, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–2000, पृ०सं०–18

मनुष्य के संवेदनहीन होने पर चिन्ता व्यक्त करती है, ''वही त्रेता युग का खून इस कलजुग तक आते–आते पानी बन गया ठहरा। और नरेन्द्र कहने वाला हुआ, कि कलजुग के आखिरी चरण तक यह पानी भी सब रसातल में चला जायेगा, और खाली कछुए की पीठ जैसे बज्जर नंगे पहाड़ और पाथर ही रह जायेंगे यहाँ करके।''[1]

ऊष्माहीन तथा नाममात्र के रिश्तों के कारण ही व्यक्ति–व्यक्ति में अघोषित दूरियाँ पनपती जा रही हैं। 'कैंसर' कहानी में दामोदर कैंसर रोग से पीड़ित है। पिता की आसन्न मृत्यु जानकर भी पुत्रों का कर्त्तव्य सिर्फ आर्थिक रूप में ही पूरा हो जाता है। छोटे बेटे को केवल एक सप्ताह की छुट्टी मिली है और वापिस लौटते हुए माँ को यह समझा जाता है कि ''जैसे ही जरूरत होगी, बड़के भैया तार या फोन से खबर कर देंगे, वह तुरन्त आ.....। दामिनी जीजी से फोन पर बात हुई थी, अभी जीजाजी को छुट्टी नहीं है, फिर अभी तो बाबूजी ठीक ही..... तभी खबर कर..... बच्चों का भी स्कूल..... फिर नोटों का एक पुलिंदा उनके पास सरकाकर वह उठ गया था। वे चुपचाप उन्हें ताकती रहीं। आखिर सारे रिश्ते इसी ढेरी पर आकर चुक जाते हैं।''[2] आज के अर्धपोषित समाज में सम्बन्धों की सरल धारा, स्वार्थ के रेगिस्तान में न जाने कहाँ खो गयी है। सम्भवतः 'कैंसर' सिर्फ पिता को ही नहीं है अपितु पूरी पारिवारिक व्यवस्था को है। आज संवेदना परिवर्तन, अजनबीपन, निरर्थकता एवं असुरक्षा बोध स्पष्टतः दिखाई देते हैं क्योंकि ये सब वर्तमान जीवन की विडम्बनाएँ हैं। कहानी 'व्यक्तिगत' में बाप–बेटा, पति–पत्नी एक ही छत के नीचे रहते हुए अजनबीपन लिये हुए हैं, ''इतने सालों के गुजर जाने के बावजूद एक दूरी का अहसास दोनों के दरम्यान पर्दे की तरह टँगा रहता था।''[3]

समाज में दिखावे की मानसिकता अत्यधिक हावी होती जा रही है। एक चेहरे पर अनेक चेहरे लगाने पड़ते हैं। इसी सत्य को 'चेहरे' कहानी में मिसेज

---

1 पाण्डे, मृणाल, पटरंगपुर पुराण, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1983, पृ०सं०–8

2 पाण्डे, मृणाल, कैंसर (कहानी–संग्रह : यानी कि एक बात थी), राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा० लि०, नई दिल्ली, सन्–1990, पृ०सं०–120

3 पाण्डे, मृणाल, व्यक्तिगत (कहानी–संग्रह : यानी कि एक बात थी), राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1990, पृ०सं०–34

कंपानी के माध्यम से प्रदर्शित किया गया है। ''अभी डिनर में आना है, वहाँ तो यह वाला चेहरा नहीं चलेगा। तो फिर कौन–सा लगाये! उदास तलाकशुदा औरत का? नहीं, वह तो बड़े–बूढ़ों के सामने लगाने के लिए ठीक है। बच्चों की थकी माँ का? उहुँक, वह तो लेडीज क्लब के लिए शोख छोकरी का? उहुँक, इधर वजन कुछ बढ़ गया है, जँचेगा नहीं। तो फिर? अच्छा हाँ, ठीक याद आया, अपनी शादीवाला कुल–वधू का चेहरा लगा लेगी। उसके उस खिले और लजाये चेहरे के ग्लैमर पर विदेशी हमेशा लट्टू हुए हैं।..... तभी..... अपना बौद्धिक चेहरा उतारती हुई वह तेज–तेज कदमों से अपने कमरे में घुसी और ड्राअर खोलकर दूसरा चेहरा तलाशने लगी।''[1] कहानी 'बिब्बो' में भी लगभग यही स्थिति है। जहाँ एक संभ्रात दम्पती अपनी आधुनिक तथा खुली मानसिकता का परिचय देते हुए युवा नौकरानी 'बिब्बो' को एक ओर तो पूरी तरह से आधुनिका बनाने का प्रयोग करते हैं परन्तु अपने दकियानूसी विचारों से स्वयं को मुक्त भी नहीं कर पाते। अन्ततः वे त्रिशंकु–सी स्थिति में आकर बिब्बो को पुनः गाँव भेज देते है। ''पत्नी अपनी भोली–भाली आवाज में मित्रों को प्रायः बताती थी कि बिब्बो घर के क्षेत्र में उनका एक प्रजातांत्रिक प्रयोग थी। अगर आप इंसानों की तरह उनसे पेश आयें तो कोई कारण नहीं कि नौकर हमदर्द मनुष्यों की तरह आपके घर में काम न करें, उनकी भी 'वाइब्स' हैं, उनकी भी 'एम्बियाँसेज' हैं, नहीं?''[2]

''मानव में मानवता, शूरता और साहस मानों खो गये हैं। ऐसी स्थिति में कोई शांत, संतुलित होकर कैसे बैठा रह सकता है। जबकि उसका अन्तर्मन बेचैन हो।''[3] मनुष्य पारिवारिक सम्बन्धों के प्रति उदासीन होता जा रहा है। 'अब्दुल्ला' कहानी में अब्दुल्ला किशोर आयु का है। वह अपनी सौतेली माँ तथा पिता के कठोर व्यवहार के कारण उपेक्षा का शिकार हो जाता है। सौतेली माँ की प्रताड़ना के कारण उसका मन घृणा से भर जाता है। ''सोने से पहले उस पर वह रोज रात अपने अल्ला मियाँ

---

1 पाण्डे, मृणाल, चेहरे (कहानी–संग्रह : यानी कि एक बात थी), राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1990, पृ०सं०–64

2 पाण्डे, मृणाल, बिब्बो (कहानी–संग्रह : बचुली चौकीदारिन की कढ़ी), राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा० लि०, नई दिल्ली, सन्–1990, पृ०सं०–11

3 अरोड़ा, ज्ञानवती, समसामयिक हिन्दी कहानी में बदलते पारिवारिक सम्बन्ध, सूर्य–प्रकाशन, दिल्ली, सन्–1989, पृ०सं०–109

के आगे दुआ करता था, कि अल्ला उसके गुनाहों को माफ करे लेकिन उसको जीते जी कुत्ते की जिन्दगी जीने पर मजबूर करने वाली सौतेली माँ को कतई नहीं।''[1]

आज भौतिकतावादी संस्कृति में मानव सम्बन्धों को भूलता जा रहा है। सम्बन्ध मात्र औपचारिक बन गये हैं। एक चारदीवारी से जुड़े होने पर भी पारिवारिक सदस्य अलग–थलग पड़े हुए हैं। 'चिमगादड़ें' कहानी इसी का एक उदाहरण है। जहाँ परिवार के लोग अनचाही बेबसी से बँधे हुए एक–दूसरे से मुक्त होने के लिए छटपटा रहे हैं। सम्बन्धों में नैतिक मूल्यवत्ता तथा भावुकता समाप्त हो रही है, ''ठीक कहते थे डॉक्टर डैनियल कि अगाथा, आदमी का अपना ही खून सबसे ज्यादा दगा देता है। क्या मालूम था मुझे, मेरे ईसू कि अपनी ही बेटियाँ रोटी रोटी पर टोकेंगी।''[2] बेटियों का माँ के प्रति यह व्यवहार सम्बन्धों पर प्रश्नचिह्न लगा देता है।

अतः मृणाल पाण्डे ने जहाँ पारिवारिक सम्बन्धों के सकारात्मक रूप को निष्ठापूर्वक चित्रित किया है, वहीं इन सम्बन्धों के नकारात्मक रूप को दिखाने में भी पूरी ईमानदारी बरती है। सम्बन्धों के इस सूक्ष्म विश्लेषण में उनकी दृष्टि सदैव यथार्थ पर ही केन्द्रित रही है। कभी घटना, कभी परिस्थिति और कभी पात्रों के माध्यम से सम्बन्धों का अवलोकन एवं अन्वेषण करती हुई उनकी शैली सदैव मार्मिक एवं अभिव्यंजनामूलक बन पड़ी है।

4.5 दाम्पत्य सम्बन्धों में तनाव एवं बिखराव

मानवीय सम्बन्धों में परिवर्तन का एक बहुत बड़ा हिस्सा दाम्पत्य जीवन के इर्द–गिर्द घटित होता है। आधुनिकता, यांत्रिकता, शहरीकरण आदि के कारण आज पति–पत्नी सम्बन्धों में तनाव की स्थिति पैदा हो रही है। पति–पत्नी के सम्बन्धों की सार्थकता, कोमलता तथा मधुरता अब अतीत की बात बनते जा रहे हैं। नई मान्यताओं और नये मूल्यों ने दाम्पत्य सम्बन्धों को एक नये शिखर पर लाकर खड़ा कर दिया है जहाँ सतीत्व, सेवा एवं समर्पण शब्द बहुत ही छोटे और निरर्थक प्रतीत

---

1 पाण्डे, मृणाल, अब्दुल्ला (कहानी–संग्रह : चार दिन की जवानी तेरी), राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1995, पृ०सं०–87

2 पाण्डे, मृणाल, चिमगादड़ें (कहानी–संग्रह : यानी कि एक बात थी), राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1990, पृ०सं०–17

होते हैं। ''स्त्री–पुरुष सम्बन्धों की या विवाहित दम्पतियों की कोमलता और उनका मानसिक धरातल जैसे नष्ट होता जा रहा है..... जब तक दम्पतियों का मिलन आध्यात्मिक मिलन में परिणित नहीं हो जाता दाम्पत्य–जीवन की सफलता दुर्लभ है।''[1] जब 'दाम्पत्य–जीवन' में अलगाव की स्थितियाँ आती हैं, तब परिवार के टूटने और बिखरने का खतरा पैदा हो जाता है।

हेतु भारद्वाज का भी मत है कि ''व्यक्ति–व्यक्ति के सम्बन्धों में सबसे जटिल, नाटकीय और अनिवार्य सम्बन्ध स्त्री–पुरुष का आपसी सम्बन्ध है, इसलिए वही लेखकों को साधारण रूप से आकर्षित करता है।''[2] लेखिका मृणाल पाण्डे का भी दाम्पत्य–सम्बन्धों के सन्दर्भ में चिन्तन आत्मचेता भी है और समाजचेता भी। उन्होंने अपने साहित्य में असामंजस्यपूर्ण एवं खण्डित दाम्पत्य–जीवन के विविध रूप, उनके मूलभूत कारण तथा दुःखद परिणामों को कुशलतापूर्वक निरूपित किया है।

'रास्तों पर भटकते हुए' उपन्यास में सामाजिक मर्यादा को निभाने के लिए डॉक्टर साहब अपने प्रवासी पुत्र का विवाह उसकी इच्छा के विरुद्ध मंजरी से कर देते हैं परन्तु दोनों में आपसी तालमेल के अभाव के कारण सम्बन्ध बिखर जाता है, ''आपने ही कराई जबरन शादी, आप ही निभाइए।''[3] अपने बिखरे दाम्पत्य–जीवन पर मंजरी यही चिन्तन करती है कि जब उसके पति ने उससे जन्म–जन्म का साथ निभाने का वायदा ही नहीं किया था, तो वह निभाता भी क्यों।

कथाकार कमलेश्वर दाम्पत्य सम्बन्धों में आए परिवर्तन के लिए स्त्री–पुरुष की मानसिकता को उत्तरदायी मानते हैं, ''दोनों की बदली हुई मनःस्थिति ने पति और पत्नी की इकाई को दो अर्ध इकाइयों में बदल दिया है। अब ये अर्ध इकाइयाँ अपने परिवेश के संगत मूल्यों और पद्धतियों को चुनकर स्वतंत्र और पूर्ण बनने की दिशा में अग्रसर हैं। आज पति–पत्नी ऐसा घर चाहते हैं, जो सामाजिक रूप से

---

1 भटनागर, उर्मिला, हिन्दी उपन्यासों में दाम्पत्य–चित्रण, अर्चना प्रकाशन, जयपुर, सन्–1991, पृ०सं०–245

2 भारद्वाज, हेतु, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में मानव–प्रतिमा, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, सन्–1983, पृ०सं०–230

3 पाण्डे, मृणाल, रास्तों पर भटकते हुए, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्– 2000, पृ०सं०–22

स्थायी हो और परम्परागत बोझ से मुक्त हो।''[1] मृणाल पाण्डे द्वारा लिखित उपन्यास 'विरुद्ध' में रजनी स्वयं को पति के समक्ष अपूर्ण तथा व्यक्तित्वहीन अनुभव करती है जिसके कारण उसका व्यवहार आक्रामक हो जाता है। पति उदय के साथ उसकी झड़पें होने लगती हैं, ''क्या उनके विगत सारे झगड़ों की तल्खी किसी न किसी तरह परोक्ष रूप से हर बार उन दोनों के दरम्यान फिर–फिर नहीं आ पैठती?''[2] तनावग्रस्त रजनी बार–बार अपने माता–पिता के घर जाती है परन्तु लौटने पर, ''वे दोनों आज फिर से अकेले एक–दूसरे के सामने आ बैठे थे– जुझारु योद्धाओं की तरह तैयार, अपने सशंक हथियार मांजते हुए।''[3]

असंतोष तथा अपेक्षाओं के आधिक्य के कारण भी सम्बन्धों में पारस्परिक मतैक्य बढ़ने लगा है। परिणामस्वरूप वैवाहिक सम्बन्ध उलझने लगे हैं तथा टकराव भी बढ़ने लगा है। 'हमका दियो परदेस' उपन्यास में लेखिका ने बालिका टीनू के माध्यम से उसके माता–पिता के दाम्पत्य सम्बन्धों में व्याप्त तनाव की मार्मिक अभिव्यक्ति इन शब्दों में की है, ''हमारे माँ–बाबू के झगड़े मुझे बस दिखने ही लगे हैं। वे ऐसा खौफ़नाक डर और दुःख पैदा करते हैं कि मेरा कलेजा पथरा जाता है।''[4]

'शरण्य की ओर' कहानी में पालित और उमी, पति–पत्नी की तरह रह रहे हैं। सम्बन्धों में असन्तुलन के कारण उनमें व्यवहारगत कटुता आ गयी है। दोनों एक–दूसरे से खिंचे–खिंचे से रहते हैं, ''दुनिया के दिखावे को समझौता हो भी गया, तो क्या? अंधा भी देख सकता है कि दोनों इससे कितने असन्तुष्ट हैं..... कैसे एक–दूसरे को बुली करते रहते हैं.....।''[5]

भारतीय समाज में पुरुष प्रारम्भ से ही सामाजिक तथा पारिवारिक कार्यों में सर्वेसर्वा रहा है। 'कैंसर' कहानी में दामोदर सामन्तवादी प्रवृत्ति का है। उसकी पत्नी

---

1 कमलेश्वर, नयी कहानी की भूमिका, अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, सन्–1969, पृ०सं०–159

2 पाण्डे, मृणाल, विरुद्ध, सरस्वती विहार, नई दिल्ली, सन्–1977, पृ०सं०–11

3 यथावत्, पृ०सं०–136

4 पाण्डे, मृणाल, हमका दियो परदेस, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्– 2001, पृ०सं०–3

5 पाण्डे, मृणाल, शरण्य की ओर (कहानी–संग्रह : यानी कि एक बात थी), राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1990, पृ०सं०–55

सुरजी सहयोगी एवं मित्र जैसे व्यवहार की अपेक्षा रखती है परन्तु पति केवल शासन चलाना जानता है। जिससे दोनों के मध्य दूरियाँ पनपती हैं, ''चालीस साल के सहवास में उन्हें एक भी दिन याद नहीं, जबकि सुरजी ने खुलकर उनसे बराबरी के लहजे में बात की हो। उन्होंने कभी उन्हें खिल–खिलाकर लोटपोट होते नहीं देखा। कभी खुलकर गुस्सा उगलते नहीं सुना। जब कभी हाथ उठाकर उन्होंने सुरजी की टोह लेने की कोशिश की है, उनके अपने अकेलेपन को बाँटने के लिए उनके हाथ लगी है बस अव्यक्त वेदनाओं और गूढ़ तानों के बीच धुंधलाती एक स्त्री आकृति।''[1]

प्राचीन नारी के लिए जहाँ 'विवाह' एक पवित्र बंधन था, जिसे तोड़ना वह अपराध समझती थी वहीं ''आज की नारी दाम्पत्य जीवन में थोड़ी–सी दरार पड़ने पर ही एक ही घर में रहकर घुटने की बजाय अलग होकर अपने ढंग से जीना ज्यादा पसन्द करती है।''[2] 'कगार पर' कहानी में जब मिली को पति विष्णु से बेलाग अनुभव होने लगता है तो वह बिना किसी संकोच के सम्बन्ध को तोड़ देती है, उसका विचार है कि उन्हें समय रहते एक–दूसरे और बच्चों के भले के लिए अलग हो जाना चाहिए और जितनी जल्दी हो सके उतना ही बेहतर होगा।

पति–पत्नी के बीच संस्कारों की असमानता तथा आपसी टकराहट दाम्पत्य जीवन में बिखराव को जन्म देती है। कहानी 'कौवे' में पति–पत्नी के सम्बन्धों में दरार का कारण सांस्कृतिक भिन्नता है। विदेशी पत्नी गीजेला अपना देश छोड़कर भारत में बसना नहीं चाहती, जिसके कारण तनाव की स्थिति पैदा हो जाती है, ''करोगे क्या?' गीजेला चीखी थी– 'वही जो वहाँ बैठे तुम्हारे परम पूज्य पिता और माता कहेंगे। तुम लोग अपनी इच्छा से कब कुछ कर सकते हो? वे लोग कहेंगे उठो तो उठोगे, बैठो तो.....'चुप करो!' वह चिल्लाया था।''[3] आपसी तालमेल के अभाव में तलाक की स्थिति पैदा हो जाती है। कानूनी फैसले और अपने स्वभाव

---

1 पाण्डे, मृणाल, कैंसर (कहानी–संग्रह : यानी कि एक बात थी), राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1990, पृ०सं०–125

2 कुमार, सरिता, महिला कथाकारों की रचनाओं में प्रेम का स्वरूप, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1983, पृ०सं०–192

3 पाण्डे, मृणाल, कौवे (कहानी–संग्रह : यानी कि एक बात थी), राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1990, पृ०सं० 184–185

के अनुरूप मनोमालिन्य तो मिट गया, परन्तु ऊब तथा एक जड़ उदासीनता दोनों के बीच फैल गयी थी।

माता–पिता का अमर्यादित व्यवहार तथा उनके आपसी सम्बन्धों में उत्पन्न दरार बच्चों को स्वच्छन्द एवं उद्दण्ड बना देती है। 'बर्फ' कहानी का परिवार इसी त्रासदी से गुजर रहा है। बच्चे अपनी माँ के विषय में बेपरवाह होकर बताते हैं कि उनकी माँ को सही ढंग से बोलना भी नहीं आता। उन्हें समझ में नहीं आता वह कैसे सीमा पार कर जाती है? वे अपने पिता के विषय में भी तीखे शब्दों का प्रयोग करते हैं, जिससे उनके माता–पिता में बढ़ती दूरियाँ स्पष्टतः परिलक्षित होती हैं, ''लग तो रहे हैं वैसे ही। शायद सोच रहे हैं कि.....कि वो बड़े ग्रेट लग रहे हैं।''[1] माता–पिता का आपसी क्लेश बच्चों पर मनोवैज्ञानिक रूप से प्रभाव डालता है। 'खेल' कहानी में भी इसी प्रकार की परिस्थितियाँ वर्णित हैं। जहाँ बच्चों को माता–पिता के रोज–रोज के झगड़ों से चिढ़ चढ़ जाती है। झगड़े में उनकी माँ रो–रोकर बेहाल हो जाती है। इसीलिए मम्मी–पापा वाला घर–घर खेलना उन्हें बिल्कुल पसन्द नहीं है क्योंकि वहाँ पर सदा झगड़ा ही होता है।

कहानी 'लक्का–सुन्नी' में भी पति–पत्नी के तलाक के कारण बच्ची अमृता उर्फ 'ता' अपना मानसिक संतुलन खो बैठती है। अब वह अपनी नानी के साथ रहती है। 'ता' की इस मनोदशा से उसकी नानी बेहद दुःखी है। नानी के शब्दों में, ''दो साथी बना लिये हैं इसने अपने, अपने ही मन में। कितना दिल फिराने की कोशिश की, पर उन्हीं से दिन भर खेलती रहती है– ओने–कोने में। जैसे सचमुच के हों।.....मैं कभी पूछती हूँ ईश्वर से, हमने किसी का क्या बिगाड़ा था? और इस बच्चे ने?''[2] नानी बताती है कि जब दोनों माँ–बेटी उसके पास लौटी थीं तो वें बहुत सहमी एवं भयभीत थीं। अतः सम्बन्धों की यह दरकन बाल–मस्तिष्क एवं स्त्री के लिए दुःखद है।

---

1 पाण्डे, मृणाल, बर्फ (कहानी–संग्रह : यानी कि एक बात थी), राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1990, पृ०सं०–230

2 पाण्डे, मृणाल, लक्का–सुन्नी (कहानी–संग्रह : बचुली चौकीदारिन की कढ़ी), राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1990, पृ०सं०–133

आज के सभ्य एवं शिक्षित समाज में स्त्री को वह सम्मानीय स्थान प्राप्त नहीं है जिसकी वह अधिकारिणी है। माँ, गृहिणी, बाद में कामकाजी स्वरूप से स्त्री आज दोहरी नहीं तिहरी जिम्मेदारी में पिस रही है। विड़म्बना यह है कि उसे परिवार में परायेपन का ही दंश झेलना पड़ता है। प्रो० नीरजा सूद ने अपने आलेख 'विचार कविता और फैंटेसी की त्रिवेणी' में लिखा है, ''कितना मुश्किल होता है स्त्री के लिए इस सच को लील पाना कि शादी के बाद पराया धन, पराई अमानत और पराई लड़की के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।''[1] 'एक स्त्री का विदागीत' कहानी में सुषमा कामकाजी स्त्री है, परन्तु संयुक्त परिवार में उसे निरादर ही प्राप्त होता है, इसका प्रभाव उसके दाम्पत्य सम्बन्धों पर भी पड़ता है। ''बीस साल के दाम्पत्य जीवन ने उसे बखूबी सिखा दिया था कि ऐसे समय अपनी शहादत और आत्मदया की आँच में तपकर उसकी पत्नी सुई की तरह कठोर और नुकीली बन जाती है। ठंडी इस्पाती, चमकदार और मर्मभेदी।''[2]

कहानी 'पितृदाय' में सुमति और जैफरी पति–पत्नी हैं। दोनों विदेश में रहते हैं। सुमति पेशे से डॉक्टर है। दोनों के दाम्पत्य जीवन में तनाव है। जैफरी नशीले द्रव्यों का सेवन करता है परिणामतः सम्बन्धों में खटास पैदा हो जाती है। सुमति स्वदेश लौटना चाहती है परन्तु उसके पिता उससे नाराज हो जाते हैं। उसे भारत लौटने के लिए मना कर देते हैं। वह वहीं अमरीका में ही रहती है। उसके भाई को निरन्तर यह चिन्ता लगी रहती है कि कहीं वह भी नशीले पदार्थ न लेने लग जाए।

जीवन की जटिलताओं एवं यंत्रणाओं के बीच दाम्पत्य सम्बन्धों में एकाकीपन, क्षोभ, घृणा, उपेक्षा के कारण मानसिक अशांति आज के जीवन की सामान्य बात हो गयी है। समग्रतः मृणाल पाण्डे द्वारा दाम्पत्य–जीवन की विविध स्थितियों का विश्लेषण व्यावहारिक धरातल पर किया गया है।

---

1 भारद्वाज, प्रेम (संपा०), पाखी (पत्रिका), इंडिपेंडेंट मीडिया इनिशिऐटिव सोसायटी, नई दिल्ली, जून–2013, अंक–9, पृ०सं० 81–82

2 पाण्डे, मृणाल, एक स्त्री का विदागीत (कहानी–संग्रह : बचुली चौकीदारिन की कढ़ी), राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1990, पृ०सं०–90

4.6 विवाह–पूर्व एवं विवाहेतर प्रेम सम्बन्ध

स्त्री या पुरुष दोनों में से किसी एक का अन्य स्त्री या पुरुष से जुड़ाव अथवा लगाव होता है, तब ऐसे सम्बन्ध प्रेम–सम्बन्धों की श्रेणी में आते हैं। प्रेम–सम्बन्ध दो प्रकार के होते हैं–'विवाह–पूर्व' तथा 'विवाहेतर प्रेम सम्बन्ध'।

प्रेम सम्बन्धों का विश्लेषण करते हुए डॉ० भगवानदास वर्मा लिखते हैं, ''आधुनिक समाज में स्त्री–पुरुष सम्बन्धों का एक स्तर वह है, जहाँ सम्भोग के शारीरिक सुख की तृप्ति के लिए सामाजिक बन्धनों को चुनौती दी जाती है। दूसरा स्तर वह है, जहाँ स्वावलम्बी स्त्री–पुरुष बिना किसी कानूनी सम्बन्ध के यौन–मुक्ति के लिए प्रयत्नशील रहते हैं।''[1] मृणाल पाण्डे ने भी अपने कथा–साहित्य में भारतीय समाज में पनप चुके इन प्रेम–सम्बन्धों को अनदेखा नहीं किया, अपितु अत्यन्त जोखिम उठाते हुए इन सम्बन्धों के यथार्थ रूप का अंकन किया है।

भारतीय समाज में स्त्री–पुरुष के विवाह–पूर्व तथा विवाहेतर प्रेम सम्बन्ध मान्य नहीं हैं। किन्तु इस सत्यता से इंकार नहीं किया जा सकता कि पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव स्वरूप ऐसे सम्बन्ध चोरी–छिपे ही सही, इनमें अभूतपूर्व वृद्धि हुई है।

'विरुद्ध' उपन्यास में बिल्लो के विवाह से पहले प्रेम–सम्बन्ध सोमेन्दु नामक लड़के से थे, ''कुछ साल पहले बिल्लो और उसे लेकर कुछ चिमेगोइयाँ भी होती रही थी, सच थीं या नहीं वे ही दोनों जानें पर दोनों ने फिर अपने स्वभावानुसार वह रिश्ता तोड़कर दूसरे साथी खोज लिए थे।''[2] विवाह–पूर्व प्रेम सम्बन्ध स्थापित होने पर युवक तथा युवती दोनों को ही द्वन्द्वमय स्थिति का शिकार होना पड़ता है जिससे वे परिवार में समायोजित भी नहीं हो पाते हैं।

उपन्यास 'रास्तों पर भटकते हुए' में भी डॉक्टर साहब का बेटा विवाह–पूर्व सम्बन्धों के कारण अपने वैवाहिक जीवन को सुखमय नहीं बना पाता। उसका मंजरी

---

1 वर्मा, भगवानदास, कहानी की संवेदनशीलता : सिद्धान्त और प्रयोग, ग्रन्थम प्रकाशन, कानपुर, सन्–1972, पृ०सं०–201

2 पाण्डे, मृणाल, विरुद्ध, सरस्वती विहार, नई दिल्ली, सन्–1977, पृ०सं०–55

से तलाक हो जाता है, ''साल भर बाद पति छोड़कर वापस लौट गया, अपनी अविस्मरणीय गरट्रूड़ के पास।''[1]

'एक नीच ट्रैजेडी' कहानी की पुष्पिंदर यानी पुसी आधुनिक लड़की है। उसका विवाह–पूर्व प्रेम सम्बन्ध अन्य पुरुष के साथ है, यह जानते हुए भी कि उसके परिवार में वह पुरुष स्वीकृत नहीं होगा फिर भी वह उसके साथ अंतिम सीमा तक खुलती है। सबको मालूम था कि अंततः उसके दोस्त से उसका विवाह नहीं होगा, क्योंकि वह जाति का बनिया और हैसीयत में भी पुसी के परिवार से कम था। परन्तु पुसी बेपरवाह थी, उसे इस बात को लेकर कोई महीन किस्म के दुःख नहीं थे।

विवाह–पूर्व स्त्री–पुरुष के प्रेम–सम्बन्धों का एकमात्र कारण आनन्द–प्राप्ति ही है। जब समाज के समक्ष दुराव–छिपाव का भेद खुल जाता है तो स्थिति अत्यन्त घृणित एवं हेय हो जाती है। ''ऐसे सदस्यों का समाज में विवाह होने में बड़ी कठिनाई आती है। समाज की ओर से इस सम्बन्ध में पुरुष को कुछ छूट अवश्य मिल जाती है, किन्तु स्त्री के लिए विवाह–पूर्व काम–सम्बन्ध स्थापित करना घोर अपराध है।''[2] कहानी 'लेडीज टेलर' में मास्टरनी सुमनलता के प्रेम–सम्बन्धों की चर्चा बनी रहती है जिसके कारण उसका विवाह भी नहीं हो पाता। उसका सम्बन्ध एक बंगाली संगीत शिक्षक के साथ भी था, ''लोगों का कहना था कि मास्टर की जबरजंगी विधवा माँ ने कलकत्ते से आके जो अपने इकलौते लड़के के घर ये रासलीला होती देखी तो आनन–फानन बेटे का बिस्तरा बँधवा दिया और टप्प चील–जैसी टीप ले गयी उसे दूसरे शहर को। और तब अंत में वहाँ जिसे मास्टरनी ही बनना था, मास्टरनी बन ही गयी। धोतियों की रंगीनी जाती रही। गलत हिज्जों वाले निबंधों और चाक से सलेटी हुए श्यामपटों के बीच धुँधलाता उसका चेहरा स्याह, सूखा और वीरान होने लगा।''[3]

---

1 पाण्डे, मृणाल, रास्तों पर भटकते हुए, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–2000, पृ०सं०–22

2 श्रीवास्तव, धर्मेन्द्र (डॉ०), हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक विघटन, उमेश प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्–1995, पृ०सं०–122

3 पाण्डे, मृणाल, लेडीज टेलर (कहानी–संग्रह : बचुली चौकीदारिन की कढ़ी), राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1990, पृ०सं०–194

विवाह–पूर्व प्रेम सम्बन्धों की जानकारी होने पर पति–पत्नी के मधुरतम से मधुरतम सम्बन्ध भी विछिन्न हो सकते हैं। कहानी 'तुम और वह और वे' में नायिका को विवाहोपरान्त भी पूर्व प्रेमी और उसके संस्मरण हृदय को सालते रहते हैं। परन्तु उसके मन में यह भय भी बना रहता है कि कहीं भेद खुल न जाए। ''क्या उसने अपनी बीवी को तुम्हारे और अपने बारे में बताया होगा? यानी माँ से और दूसरों से वह जो सुन चुकी होगी, उसके अलावा।''[1] एक दिन अपने पूर्व प्रेमी हर्ष तथा उसकी पत्नी मंजू से अचानक मुलाकात हो जाने पर, उसके मन में आक्रोश धधकता ही रहता है।

आधुनिक युग में यह प्रचलन बढ़ गया है कि अपने अनुकूल जीवन साथी को तलाश किया जाए। जिसके साथ जीवन गुजारना है उसको भली–भाँति जाँचना। परन्तु प्रत्येक प्रेम–सम्बन्ध विवाह का रूप नहीं ले पाता। किसी दूसरे से जुड़ने एवं बँधने की प्यास मानव में स्वाभाविक होती है। ''समाज के पुरुष प्रधान होने के कारण मनुष्य ने विवाह–पूर्व और विवाहोपरांत काम–सम्बन्धों को बनाये रखने की सुविधाएँ खोज रखी हैं। पुरुष ने पत्नी के अतिरिक्त काम–सम्बन्धों की पूर्ति के लिए नारी को उपपत्नी के रूप में, प्रेयसी या प्रेमिका के रूप में तथा वेश्या के रूप में अवश्य रखा है। नारी भी अवसर मिलने पर पुरुषों से पीछे नहीं रहती।''[2]

विवाह–पूर्व सम्बन्धों के अतिरिक्त विवाहेतर सम्बन्ध भी लेखिका की रचनाओं में ध्वनित हुए हैं। 'विरुद्ध' उपन्यास में रजनी का ससुर अपनी पत्नी की मृत्यु के पश्चात् बेटे उदय को सुदूर विद्यालय के छात्रावास में भेज देता है। तत्पश्चात् वह अन्य स्त्री के साथ सम्बन्ध स्थापित कर लेता है, ''खूब मजे किए थे उन्होंने भी। प्ले बॉय कुंवारों की तरह, मैंने क्या यह सब कहानियाँ नहीं सुनीं? एक रहती तो थीं..।''[3] इसी उपन्यास में आण्टी बलजीत के पति के विवाहोपरांत प्रेम–प्रसंगों की चर्चा भी की गई है। उनके पति खुल्लम–खुला एक पठान रखैल रखते थे। दोनों पति–पत्नी

---

1 पाण्डे, मृणाल, तुम और वह और वे (कहानी–संग्रह : यानी कि एक बात थी), राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1990, पृ०सं०–89

2 त्रिपाठी, नरेन्द्रनाथ (डॉ०), साठोत्तर हिन्दी नाटकों में स्त्री–पुरुष सम्बन्ध, सारस्वत प्रकाशन, नई दिल्ली, सन्–1985, पृ०सं०–53

3 पाण्डे, मृणाल, विरुद्ध, सरस्वती विहार, नई दिल्ली, सन्–1977, पृ०सं०–87

में कई वर्षों से बोलचाल बन्द थी। अतः सम्पन्न परिवारों में बहुगामी संस्कार इतना भयानक प्रसार पाते हैं कि उनकी महिलाएँ बुरी तरह दबकर रह जाती हैं। उन्हें विवश होना पड़ता है सम्पन्नता के धरातल पर, इस अमानवीय स्थिति से समझौता करने के लिए।

मनुष्य जब किसी परायी स्त्री के साथ विवाहोपरांत प्रेम–प्रसंग में पड़ जाता है तब उसकी बुद्धि विवेकहीन हो जाती है तथा लोक–मर्यादा का नाश हो जाता है। 'पटरंगपुर पुराण' तथा 'देवी : समयातीत गाथाएँ स्त्रियों की' उपन्यास में इसी प्रकार की अवस्था का चित्रांकन है। 'पटरंगपुर पुराण' उपन्यास का रामदज्जी ब्राह्मण खस औरत के प्रेम–जाल में बँध जाता है, ''बस, जो जादू चला होगा इस औरत का उन पर, कि उसी घड़ी से वह और वह खस्याणी, वह खस्याणी और वह। कहाँ का घर–धाम, कहाँ की पुरोहिती।''[1] 'देवी : समयातीत गाथाएँ स्त्रियों की' उपन्यास में हीराबल्लभ जो अस्पताल में कम्पाउण्डर था। वह चार बच्चों का पिता था। लोक–लाज विस्मृत कर वह सरूली नामक युवती से प्रेम–सम्बन्ध स्थापित कर लेता है, ''हुक से उसे मुक्त करने का बहाना करती सरूली उससे सटी जा रही थी, और डोर खोलता हीराबल्लभ एक और किस्म के पाश में बँधा जा रहा था।''[2]

विवाह शिविर के नीचे पर–पुरुष के साथ खुलने की सुविधा का उपभोग 'कोहरा और मछलियाँ' तथा 'शरण्य की ओर' कहानियों में भी किया गया है। 'कोहरा और मछलियाँ' कहानी में घर का एकमात्र पुरुष बीमारी से जूझ रहा है, घर की दशा भी श्रीहीन है। इस धरातल पर भी पत्नी पति के कई मित्रों के सम्पर्क में जाती है। जिनमें मित्र भूषण पर उसकी विशेष अनुकम्पा है। उसकी बेटी बानो के शब्दों में, ''वैसे बगैर नशे के भूषण अंकल भी काफी 'सेफ' हैं। सिवाय ममी के किसी का पीछा नहीं करते।''[3] बानो का यह भी मानना है कि उसकी माँ के विवाहेतर सम्बन्धों के कारण उसके दफ्तर के सारे लोग उसका मजाक बनाते हैं।

---

1 पाण्डे, मृणाल, पटरंगपुर पुराण, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1983, पृ०सं०–13

2 पाण्डे, मृणाल, देवी : समयातीत गाथाएँ स्त्रियों की, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1999, पृ०सं०–134

3 पाण्डे, मृणाल, कोहरा और मछलियाँ (कहानी–संग्रह : यानी कि एक बात थी), राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1990, पृ०सं०–13

लेकिन उनकी माँ को कोई परवाह नहीं है। इस प्रकार से बेटियों की माँ के अनैतिक सम्बन्धों के कारण पारिवारिक प्रतिष्ठा भी दाँव पर लग जाती है।

'शरण्य की ओर' कहानी में भी उमा के लिए विवाह एक सुरक्षा कवच है, अन्यत्र छूट लेने के लिए। इसीलिए उसके विषय में चर्चा की जाती है कि ''बहुत आजादी–पसंद घरों से आने वाली आजाद–ख्याल लड़कियाँ सिर्फ कानून और समाज को चुप रखने को शादी करती हैं। उमी को ही ले लो– बस, इसलिए, जल्दी–से–जल्दी..... ।''[1]

मनुष्य की यह एक जन्मजात प्रवृत्ति है कि वह एक ही वस्तु के अधिक सेवन से ऊब जाता है। इस प्रवृत्ति के कारण भी विवाह–संस्था को धक्का लगा है। कहानी 'दरम्यान' में प्रवासी बिहारी के विवाहोपरांत सम्बन्ध हैं। बिहारी का कहना है कि वह कई बार एक युवती के साथ सो चुका है, हालाँकि कथानायक मनोहर को विश्वास नहीं होता कि उस चुगद में इतना भी साहस है कि वह किसी सुंदर युवती का हाथ थाम ले।

इस सत्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि ''विवाह की सीमा के बाहर यौन–तृप्ति या विवाह से पूर्व यौन–सम्बन्ध अब पहले की भाँति चौंकाते नहीं हैं। फलतः स्वैरिता, परस्त्रीगमन, उन्मुक्त प्रेम तथा प्रयोगात्मक विवाह जैसी अनेक संकल्पनाएँ जन्म ले रही हैं। इन अभिवृत्तियों के मूल में आज की परिवर्तनशील परिस्थितियों और यौन–सम्बन्धों तथा विवाह के सन्दर्भ में बदलते जीवन–मूल्यों को लक्षित किया जा सकता है। सम्भवतः ये बदलते जीवन–मूल्य आज सर्वाधिक महत्त्व रखते हैं।''[2]

स्त्री–पुरुष सम्बन्धों के रूप अतीत में रहे हैं, वर्तमान काल में भी हैं और सम्भवतः भविष्य में भी रहेंगे। साहित्यकार जो सामाजिक सरोकार से सम्बद्ध है वह आँख मूँदकर साहित्य सृष्टि नहीं कर सकता।

---

1 पाण्डे, मृणाल, शरण्य की ओर (कहानी–संग्रह : यानी कि एक बात थी), राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1990, पृ०सं०–54

2 राय, लक्ष्मी, आधुनिक हिन्दी नाटक : चरित्र–सृष्टि के आयाम, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, सन्–1979, पृ०सं०–432

4.7 बुजुर्गों के प्रति उपेक्षाभाव

जीवन की संध्याबेला अर्थात् वृद्धावस्था भयावह अवस्था है। इस अवस्था में मनुष्य की शारीरिक, मानसिक तथा आर्थिक स्थिति कमजोर हो जाती है। पुरानी स्मृतियाँ मन में उथल–पुथल पैदा करती हैं। वृद्धावस्था उम्र की अंतिम अवस्था ही नहीं अपितु कठिन स्थिति भी है जिस दौरान एक वृद्ध व्यक्ति के पास तो समय है परन्तु उसके लिए किसी के पास समय नहीं है। ''उसके युवा सम्बन्धी ये मान लेते हैं कि उसने अपना जीवन जी लिया है इसलिए उसके पास कोई आकांक्षाएँ, योजनाएँ शेष नहीं बची हैं जबकि सत्य यह है कि वस्तुतः यही वह पड़ाव है जब एक व्यक्ति अपनी सभी जिम्मेदारियों से स्वयं को मुक्त पाकर अपने साथ और अपना जीवन जीने का प्रयत्न कर सकता है परन्तु विड़म्बना यह है जब वह ऐसा करना चाहता है तो बहुत बार उसकी अपनी ही संतान उसे उपहासस्पद दृष्टि से देखती है और सहयोग की स्थिति तो दूर वह उसके द्वारा किए गए प्रयासों का सम्मान तक नहीं करती।''[1]

बुजुर्गों की मनःस्थिति तथा उनके प्रति उपेक्षित व्यवहार को भी मृणाल पाण्डे ने अपने कथा–साहित्य में स्थान दिया है। वर्तमान पारिवारिक स्थितियाँ और सामाजिक समीकरण पारम्परिक मूल्यों को दरकिनार करते हुए पारिवारिक विघटन और सामाजिक विखण्डन की ओर उन्मुक्त हैं। ''स्त्री–पुरुष की पारस्परिक सम्पूर्णता शनैः शनैः समाप्त होती जा रही है, स्वार्थपरता संतानों में बढ़ रही है और बुजुर्ग पीढ़ी उपेक्षित होकर बच्चों की कृतघ्नता का शिकार बन रही है। एक अजीब–सी बेचैनी सारे परिवार–तंत्र को ध्वस्त करती दिखाई देती है।''[2]

'अपनी गवाही' उपन्यास में अमोल के दादा जी अपने समय के प्रतिष्ठित कवि रहे हैं। वृद्धावस्था में वे नितांत उपेक्षित जीवन जी रहे हैं, ''अमोल के दादा जिस जगह पर रहते थे वह गलियों और कूचों की भूल भुलैया ही थी। रिक्शावाला

---

1 सिंह, प्रेम (डॉ०), खिल्लन, रिम्पी (डॉ०), समकालीन कहानी और उपेक्षित समाज, श्री नटराज प्रकाशन, नई दिल्ली, सन्–2009, पृ०सं०–131

2 रांका, सावित्री, पन्ने जिन्दगी के, रचना प्रकाशन, जयपुर, सन्–2009, पृ०सं०–10, भूमिका से उद्धृत

यहाँ–वहाँ से होते हुए, चार जगह पता पूछते, धक्के देते–खाते हुए अचानक एक जगह आकर तेजी से मुड़ा और फिर रुक गया। अमोल ने पहले ही चेता दिया था कि घर को ढूँढ़ने में बहुत मुश्किल होगी। अब इस शहर में कोई भी इस मनमौजी और सनकी बूढ़े कवि को नहीं जानता। उनके अधिकांश समकालीन और दोस्त मर चुके हैं और नए लेखकों में कोई उसके पास जाता नहीं।.....यह तो वह आदमी है जिसने अपनी कविता और प्रेम, दोनों के लिए एक अलग भाषा चुनी और दोनों की भारी कीमत चुकाई है। इन्हीं के चलते उन्हें गरीबी और बकरी की गन्ध के साथ जीवन जीने के लिए यहाँ फेंक दिया गया है।''[1] कृष्णा को दादा जी की यह दशा विचलित कर देती है।

बुजुर्गों के प्रति संवेदनहीनता हमारे सामाजिक जीवन की कटु सच्चाई बन गयी है। उपन्यास 'पटरंगपुर पुराण' में आमा बुजुर्ग की यही स्थिति है ''ऐसा भी नहीं, कि ज्यादे लोग–बाग हों आस–पास। नीचे के खंड में उनका परपोता सुरेन्द्र का लड़का नरेन्द्र और उसकी घरवाली हरमिन्दर – यही दो हुए, बस। कभी छुट्टी–हुट्टी में और घरवाले आके देख जाने वाले हुए, नहीं तो साल–भर आमा ठहरीं, और ठहरी उनकी विष्णुकुटी।''[2]

बुजुर्गों का अकेलापन हमारे मन में ऐसी टीस पैदा करता है कि हम अपने समय को, एक नयी तरह से देखने और अनुभव करने लगते हैं। आज यह समस्या एक आयामी नहीं बल्कि बहुआयामी बन गयी है। 'रास्तों पर भटकते हुए' उपन्यास में मंजरी की माँ पार्वती एकाकीपन से जूझ रही है, ''नहीं रे! अच्छा, अब रखती हूँ। बहुत लम्बी बात हो गई। तेरे लिए फोन का लम्बा–चौड़ा बिल बन जायेगा। देख चिट्ठी लिखना मत भूलियो। एक तू ही है जिससे उन सबकी भी खबर मिलती रहती है। वर्ना वहाँ से तो महतारी को चिट्ठी–पत्री भी भेजने की एक बारगी ही पटकताल हुई।''[3]

---

1 पाण्डे, मृणाल, अपनी गवाही, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–2003, पृ०सं० 70–71

2 पाण्डे, मृणाल, पटरंगपुर पुराण, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1983, पृ०सं०–8

3 पाण्डे, मृणाल, रास्तों पर भटकते हुए, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन् 2000, पृ०सं०–43

'देवी : समयातीत गाथाएँ स्त्रियों की' उपन्यास में अम्माजी भी परिवार में स्वयं को उपेक्षित तथा एकाकी महसूस करती है। उनके पुत्र उन्हें अमरीका जाने के लिए कहते हैं ताकि वे अपने रिश्तेदारों से मिल आयेंगी, परन्तु बड़ी अम्मा प्रतिकार स्वरूप कहती है, ''न, अमेरिका वे क्यों जाने लगीं, वहाँ बूढ़ों के लिए क्या धरा है? उन्होंने खूब पढ़ रखा है, कि अमेरिका में बूढ़े पार्कों में बेंचों पर बैठे रहते हैं, श्राद्ध के दिनों में कौओं की तरह। वे परदेस में ऊब से नहीं मरना चाहतीं, वे नहीं लौटना चाहतीं कलश में मुट्ठी–भर राख बनकर। न, वे तो पहाड़ जाना चाहेंगी। जितनी भी बर्फ़ गिरे चाहे जैसे भी बुरे नौकर हों, वे किसी पर बोझ बनकर नहीं रहेंगी। उन्हें भी सब दिखता है। चुप्पी बढ़ती गई। और, तनाव भी।''[1]

'एक स्त्री का विदागीत' कहानी की बुजुर्ग सावित्री अपना सम्पूर्ण जीवन घर–परिवार को समर्पित कर देती है। भयंकर बीमारी की अवस्था में वह अपने बहू–बेटे के उपेक्षित व्यवहार से मन–ही–मन आहत होती है, ''सावित्री पूछना चाहती थी कि अरे, अपने माँ–बाप के लिए भी नहीं करोगे इतना तो फिर किसके लिए करोगे? पर पूछ नहीं पाती।''[2]

'सुपारी फुआ' कहानी में बुआ वैधव्य जीवन अपने मायके में गुजार रही है। जीवन की इस ढलान पर उसके सामने एक धुँधलका–सा छाने लगा है, ''धूप में बैठती, बारिश से बचती–बचाती, फुआ धीमे–धीमे एक कागज से काटी हुई तस्वीर की तरह बनती चली गयीं। न उनके गुण दिखते थे, न दोष। सिर्फ वह ही वह। बच्चे अकसर बड़ों से पूछते कि वे क्यों फुआ के कमरे में नहीं जा सकते? बड़े लोग उन्हें डपटकर भगा देते। वे सब एक अनकहे कोरस में सोचने लगे थे कि अब सुपारी फुआ की मुक्ति हो जाती तो अच्छा था।''[3] अतः बुआ अंतिम समय में भी अकेलेपन से जूझती, अपने परिजनों की भारी उपेक्षा को झेलती है।

---

1 पाण्डे, मृणाल, देवी : समयातीत गाथाएँ स्त्रियों की, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1999, पृ०सं०–60

2 पाण्डे, मृणाल, एक स्त्री का विदागीत (कहानी–संग्रह : बचुली चौकीदारिन की कढ़ी), राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1990, पृ०सं०–97

3 पाण्डे, मृणाल, सुपारी फुआ (कहानी–संग्रह : चार दिन की जवानी तेरी), राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1995, पृ०सं०–80, 84

उपभोक्तावादी युग में वृद्धों के प्रति असम्मान बढ़ता जा रहा है। माता–पिता ने जिन बच्चों के पालन–पोषण के लिए दिन का चैन तथा रात की नींद हराम की है, स्वयं भूखे रहकर उनका पेट भरा है, गीले में सोकर उन्हें सूखे बिस्तर पर सुलाया है, मेहनत–मजदूरी करके उन्हें स्वावलंबी बनाया है, वे ही उन्हें प्रताड़नाएँ दे रहे हैं। कहानी 'चिमगादड़ें' में मारिया तथा सोनिया का अपनी वृद्ध माँ के प्रति व्यवहार अपमानजनक है, ''अरे, मेरे ही पैसों से सब लोग खाते हो और मुझी पर सारी रोक–टोक भी लगाते हो! इतना ही पैसा किसी होटल को दे देती तो..... एक क्षण को मारिया का मन हुआ कि बुढ़िया की गर्दन के पीछे की झुर्रीदार खाल चुटकी में पकड़कर उसे ऊपर उठा ले, जैसे कुत्ते के पिल्ले को उठाया जाता है।''[1]

'दुर्घटना' कहानी में बाबूजी ने बड़े बेटे को विदेश में पढ़ने के लिए भेजा, परन्तु पिता से परामर्श के बिना वह एक धनाढ्य लड़की से विवाह कर लेता है। वह अपने विवाह–भोज में पिता को मेहमान की तरह आमंत्रित करता है। बेटे के इस व्यवहार से पिता का मन दुःखी हो जाता है, ''बाबू जी ने खाया भी बहुत कम था, शायद चम्मच–काँटों के आधिक्य के मारे। पर भाग्य से किसी ने नोटिस नहीं किया।..... खा–पीकर हम नौ बजे तक लौट आये थे। भैया और उनकी पत्नी बाद को सीधे अपने फ्लैट चले गये होंगे। बाबूजी ने कुछ नहीं कहा, किसी भी चीज के बारे में।''[2] बच्चों का माता–पिता के प्रति यह व्यवहार निंदनीय है।

हमारी सामाजिक व्यवस्था में बुजुर्गों के प्रति जो उदासीनता एवं स्नेहाभाव देखा जाता है वह निश्चित रूप से चिन्तित करने वाला है। 'कौवे' कहानी में गीजेला की माँ वृद्धाश्रम में रहती है। वह महीने में एक बार उसे देखने जाती है। उसे बुजुर्गों को देखना ही अवसाद ग्रस्त बना देता है। उसके शब्दानुसार, ''शायद इसी से इस देश में बूढ़ों को समाज की युवा नजरों से छिपाया जाता है। जब तक बाल रँगे जा सकें, उभार रबड़ में तानकर टिकाये जा सकें, तुम लोगों के बीच रह

---

1 पाण्डे, मृणाल, चिमगादड़ें (कहानी–संग्रह : यानी कि एक बात थी), राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1990, पृ०सं०–22

2 पाण्डे, मृणाल, दुर्घटना (कहानी–संग्रह : यानी कि एक बात थी), राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1990, पृ०सं०–137

सकते हो। उसके बाद अपनी छड़ी लो और समुद्र किनारे गर्म तटों की नरम आबहवा में पाँत–के–पाँत बैठे रहो कौवों जैसे, समंदर को ताकते हुए.....।''[1]

मशीनी युग में बुजुर्ग स्वयं को हाशिए पर पाते हैं। कहानी 'नुक्कड़ तक' में रामदयाल का संन्यासी बन जाना परिवार से मोहभंग की स्थिति का द्योतक है, ''आप सब देखना कि अपना रामदयाल धूनी रमाए कैसे एक टाँग पर वहाँ खड़ा है। बिना किसी सहारे के। उसकी जीभ के ऐन बीचोंबीच एक त्रिशूल छिदा हुआ है और हाथों में कुछ भी नहीं है, एकदम.....।''[2] वृद्धावस्था में जहाँ एक ओर जर्जर बूढ़ी देह अपने सम्बन्धों में ऊष्मीय अपनापन खोजती है वहीं दूसरी ओर उसे उपेक्षा मिलती है, क्योंकि अपने परिवार की संरचना के भीतर वृद्धों को सामान्यतः बेकार का सामान समझकर एक ओर कर दिया जाता है। 'चेहरे' कहानी में कंपानी साहब की वृद्ध माँ घर में फालतू बनी हुई है। ''बीजी कंपानी साहब की बूढ़ी माँ थी। बेहद सूखी कमजोर छुआरे–सी बुढ़िया, जो ऊपर पड़ी–पड़ी चिलमचियों में थूकती रहती थी। घर में वह एक ऐसी चीज थी जो घरवालों की परम्पराप्रियता दिखाने को ऐतिहासिक भग्न मूर्तियों की तरह कहीं स्थापित कर दी जाती है।''[3]

अतः हमारे वर्तमान सामाजिक परिवेश में बुजुर्गों की दशा शोचनीय है। मृणाल पाण्डे के लेखन ने समाज को सचेत किया है कि बुजुर्गों की उपेक्षा तथा अपमान अपनी जड़ों तथा परम्पराओं का अपमान है तथा इनसे कटकर मानव की उन्नति तथा विकास अर्थहीन है। यह हमारे वर्तमान और भविष्य के लिए सुखद संकेत नहीं है।

4.8 पीढ़ीगत अन्तराल से उपजा तनाव

समकालीन समाज मूल्यों के संक्रमण से गुजर रहा है। मोहभंग की स्थितियाँ बनी हुई हैं, नये और पुराने मूल्यों में टकराव है, परम्पराओं से विद्रोही होकर समाज

---

1 पाण्डे, मृणाल, कौवे (कहानी–संग्रह : यानी कि एक बात थी), राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1990, पृ०सं०–185

2 पाण्डे, मृणाल, नुक्कड़ तक (कहानी–संग्रह : यानी कि एक बात थी), राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1990, पृ०सं०–120

3 पाण्डे, मृणाल, चेहरे (कहानी–संग्रह : यानी कि एक बात थी), राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्– 1990, पृ०सं०–63

में नयी मान्यताओं की स्थापना भी हुई है। स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज में दो पीढ़ियों का संघर्ष दिखाई देता है – नयी और पुरानी। पुरानी पीढ़ी के लोग प्राचीन मान्यताओं और विचारों के समर्थक हैं और नयी पीढ़ी के लोग इन मान्यताओं को तोड़ना चाहते हैं, बदलना चाहते हैं। डॉ० भैंरूलाल गर्ग का यह मत इसी संदर्भ में दृष्टव्य है– ''स्वतंत्रता के बाद नवयुवक–वर्ग की मानसिकता में भी एक व्यापक परिवर्तन दिखाई दिया है। आज का नवयुवक स्वतंत्रता–पूर्व के नवयुवक की भाँति अमहत्त्वाकांक्षी अथवा सामाजिक स्थितियों के प्रति तटस्थ नहीं है, वरन् उसमें स्वतंत्र देश के नागरिक की सम्पूर्ण महत्त्वाकांक्षाएँ तथा हर नई स्थिति से जुड़ने की आकांक्षा विद्यमान है।''[1]

समयानुसार जीवन में नये–नये परिवर्तनों का घटित होना स्वाभाविक है। यही नवीन परिवर्तन पुरानी और नयी पीढ़ी के मध्य संघर्ष एवं तनाव का कारण बनते हैं। कई बार प्रौढ़ एवं अधेड़ लोग युवा पीढ़ी पर अपनी विचारधाराओं एवं मान्यताओं का आरोपण करने लगते हैं, जिससे तनाव की स्थिति पैदा हो जाती है। दोनों पीढ़ियों में अन्तर आरम्भ से ही चला आ रहा है। पीढ़ीगत अंतराल से उपजे विरोध के स्वर मृणाल पाण्डे के साहित्य में भी मुखरित हुए हैं।

नयी पीढ़ी में जो विद्रोह, तनाव तथा कुण्ठा पायी जाती है उसके लिए पुरानी पीढ़ी के दोहरे मापदण्ड भी उत्तरदायी हैं। 'विरुद्ध' उपन्यास की रजनी इसी पर मन्थन करती है, ''माँ–पापा अपने प्रिय विषय पर चालू हो गए थे। विगत की भव्यता और वर्तमान का ओछापन। उसने अपने–आपको भिंचता हुआ पाया। क्या इन लोगों को अपने दोहरे मानदण्डों का दोगलापन सच में नहीं खलता होगा?''[2] रजनी की बहन बिल्लो जब विदेश से भारत लौटकर आती है तब उसके सामने प्रत्येक वर्ष ''भारत के स्वर्णिम भविष्य और रूपहली संस्कृति के रूमानी खाके खींचे – दुहराए जाते हैं और पश्चिमी मूल्यों के छिछलेपन की छिछालेदर की जाती है, पर परिप्रेक्ष्य बदलते ही दोनों एकजुट हो फिर उसी सामंती उपनिवेशवादी अंग्रेज़ियत की दुहाई देने और हिन्दुस्तानियों के भोंडे जीवन की आलोचना में लीन हो जाते हैं। शायद

---

1 गर्ग, भैंरूलाल, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में सामाजिक परिवर्तन, चित्रलेखा प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्–1979, पृ०सं०–79

2 पाण्डे, मृणाल, विरुद्ध, सरस्वती विहार, नई दिल्ली, सन्–1977, पृ०सं०–98

उच्च मध्यवर्गीय सब हिन्दुस्तानियों के दो मुखौटे होते हैं। एक विदेशियों के लिए, एक स्वदेशियों के लिए। पर इस दोगलेपन के बीच एक पीढ़ी की पीढ़ी जो बौनी और अजनबी बना दी गई है उसके बारे में कोई क्यों नहीं सोचता? क्या उसका और बिल्लो का दोष है कि वे सुथरी हिन्दी नहीं बोल पातीं या घरेलू रिश्तों के प्रति वह देशी ललक और भावुकता नहीं दिखा पातीं जो माँ–पापा को अपेक्षित है? अगर उन्हें इतनी ही परम्परावादी बनाना था तो पश्चिमी सभ्यता के उस छोटे द्वीप सरीखे अलग–थलग कान्वेंट में बन्द करके किसलिए सालों पढ़ाया गया? और अगर वह संस्कृति तब इतनी ही श्लाघनीय लगती थी तो अब उन्हें कुछ दूसरी तरह की मान्यताओं की दुहाई देकर क्यों शर्मिन्दा किया जाता है?''[1] उपरोक्त पंक्तियों में उठाये गये प्रश्न निःसन्देह पूर्णतया प्रासंगिक हैं। नयी पीढ़ी के सामने जिन सामाजिक मूल्यों को रखा जाता है, उन्हीं से उनका पालन–पोषण हुआ है। निश्चित ही वे उसी के अनुरूप अपने–आपको ढालेंगे फिर उनसे इतर मूल्यों की अपेक्षा करना और पूरे न होने पर संस्कारहीनता से आरोपित किया जाना सर्वथा अनुचित है।

आज का युवा वर्ग अपने स्वतंत्र अस्तित्व की पहचान चाहता है। वह उपदेशों से सन्तुष्ट नहीं होता और न ही आँख बन्द करके बड़ों की आज्ञा का पालन करना चाहता है। खुली मानसिकता और पाश्चात्य प्रभाव उसे पुराने मूल्यों से विद्रोह करने पर विवश करते हैं। 'पटरंगपुर पुराण' उपन्यास में आमा इसी अवस्था की ओर संकेत करती है, ''अब अपनी जवानी में गोपाल डिप्टी ने भी माथघर की घंटी के लिए चक्कर कम जो क्या लगाये थे? पर जब उसके इजा–बाबू ने कह दिया कि खबरदार, मंगली हम घर नहीं लायेंगे करके, तो क्या चुपचाप ब्याह नहीं लाया वो बिन्दु को? पर सनीमा और टूरिस्टों वाला ये नया लभ बिलैती चाल का ठहरा। अब तो आँख तरेर के लौंडे उलटे बाप से बात करने लगे, कि हाँ, खूब करता हूँ लभ, और करूँगा मैं उसी से शादी, कम सम्बन्ध के हुए वे लोग तो क्या?''[2]

कहानी 'एक नीच ट्रैजेडी' में 'क' चाचा भी नयी पीढ़ी से असंतुष्ट हैं। उनका मानना है, ''कपड़ों का सलीका, बोलने का ढंग, कुछ भी ले लो, पुराने अफसर

---

1 पाण्डे, मृणाल, विरुद्ध, सरस्वती विहार, नई दिल्ली, सन्–1977, पृ०सं० 98–99

2 पाण्डे, मृणाल, पटरंगपुर पुराण, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1983, पृ०सं०–95

वाकई में थे अफसर। क्या शालीनता, क्या रोआब, वर्ना अब तो कैसे–कैसे देसी टाइप टुच्चे लोग चले आते हैं जो या तो एक जुमला अंग्रेजी भी सही नहीं बोल सकते या बस माओ और चे का नाम लेकर अलख जगाते फिरते हैं। क्या अवमूल्यन हुआ है युवा पीढ़ी का! एकदम राजनैतिक इन्वॉल्वमेंट नहीं।''[1] युवा पीढ़ी के लिए नैतिकता, आदर्श, धार्मिक रीति–रिवाज पुराने झड़ रहे जीर्ण पत्तों की तरह हैं। उनके लिए जीवन मौज–मस्ती का साधन है, ''क्या उम्र है यार, हम तो अपने घर में बेगाने हो गये। कल के छोकरे हैं, और हमसे ऐसे पेश आयेंगे जैसे कि हमारे चचा हों। एक हमारे बड़े साहबजादे हैं, जिन्हें जमाने–भर के बुजुर्ग दुश्मन लगते हैं, कभी हम–तुम भी नौजवान थे यार पर ऐसी भी क्या...।''[2] परिवर्तित परिवेश में दो पीढ़ियों का वैचारिक टकराव गम्भीर चिन्तन के रूप में उभरा है, ''तोड़ना तो बहुत आसान है, पर मैं पूछती हूँ कि जो हमारी यंगर पीढ़ी तोड़े जा रही है, तोड़े जा रही है, उसे 'रिप्लेस' किससे करेगी? यानी एक हमारी संस्कृति है, एक मर्यादा है, एक..... अब यह पीढ़ियों का टकराव तो एक चक्र–सा है।.....चल गया चल गया– रुकना तो मुश्किल है इसका। सवाल है कि क्या कुछ तरक्की हुई है? देखकर तो।''[3]

नये और पुराने के बीच आज ऐसी दुर्लभ खाई बन गई है कि इस पीढ़ी में पुराने आदर्शों, मूल्यों और विचारों के प्रति तो अनास्था है ही, नए मूल्यों की स्थापना का भी कोई मोह नहीं रह गया है। यह एक विषम स्थिति है। पुराने लोग युवाओं को अकर्मण्य और अदूरदर्शी ठहराते हैं। इसीलिए यह खाई और भी चौड़ी होती जा रही है। कहानी 'हिर्दा मेयो का मँझला' में हिर्दा अपने मित्र से युवा पीढ़ी की मानसिकता पर चिन्ता व्यक्त करते हुए पूछता है, ''क्या तू बता सकता है कि जिस सरकार को गाँधी, नेहरू, पटेल नहीं सुधार सके ये साले आज के छोकरे हॉकी इस्टिक उठा के राह पर ले आयेंगे क्या? न पढ़ना, न लिखना, न काम! कामरेडगिरी ठहरी दिन रात की।''[4]

---

1 पाण्डे, मृणाल, एक नीच ट्रैजेडी (कहानी–संग्रह : बचुली चौकीदारिन की कढ़ी), राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1990, पृ०सं०–68

2 यथावत्, पृ०सं०–73

3 यथावत्, पृ०सं०–79

4 पाण्डे, मृणाल, हिर्दा मेयो का मँझला (कहानी–संग्रह : चार दिन की जवानी तेरी), राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1995, पृ०सं०–49

'कैंसर' कहानी में सास–ससुर के परम्परागत विचार पढ़ी लिखी युवा बहू के साथ मेल नहीं खाते। ससुर दामोदर को बहू की नौकरी करना नापसन्द था, ''पर वह भी पक्के कैंडे की पढ़ी–लिखी औरत थी, जिसने चुप रहना या दबना कभी नहीं सीखा होगा। शादी के पहले ही उसने साफ कहलवा दिया था कि घर बैठकर बच्चे भर पालना या चौका सम्भालना उससे नहीं होगा।''[1]आज की युवा पीढ़ी पुरानी पीढ़ी की एकाधिकारपूर्ण तानाशाही सत्ता को चुनौती दे रही है। दामोदर की पत्नी सुरजी अपने गृहस्थ–जीवन की तुलना बहू की गृहस्थी से करती है, ''पहाड़–सा दिन उन्हें तो बउआजी के साथ ही काटना होता था। है कि नहीं? यह तो उन्हीं की लायकी थी कि उन्होंने समझदारी से इस पहलू से आँखें ही फेर ली थीं, वरना परिवार टिक सकता था कहीं? यही आजकल की बहुएँ नहीं समझतीं। अरे, खट–खटकर ही परिवार बनते हैं।''[2]

अतः कहा जा सकता है कि नयी एवं पुरानी पीढ़ी में वैचारिक मतभेद बना हुआ है। स्वीकार–अस्वीकार की यह प्रक्रिया सदैव चलती रही है। पीढ़ीगत टकराव को मृणाल पाण्डे ने अपने साहित्य में सशक्त रूप से प्रस्तुत किया है।

4.9 अकेलापन एवं संत्रास

यांत्रिक युग में जीवन की दो विड़म्बनाएँ हैं– 'अकेलापन' और 'संत्रास'। डॉ० इन्द्रनाथ मदान 'अकेलेपन' के विषय में लिखते हैं, ''अकेलापन का बोध बहुत पुराना है। मध्यकालीन है। शायद इससे भी पहले का है। उपनिषदों में भी आँका जा सकता है। आज का अकेलापन मध्यकालीन या रोमांटिक अकेलापन से भिन्न कोटि का है। मध्ययुग में यह आत्मिक स्तर पर है, रोमांटिक युग में वैयक्तिक स्तर पर और आधुनिक युग में स्थिति नियति के स्तर पर।''[3]

आधुनिक युग में अकेलापन और संत्रास मानव–जीवन का अंग बन चुके हैं, जिसकी अनुभूति प्रतिपल होती है। ''संत्रास अपनी समस्त अमूर्तता के बावजूद परिवेश, परिस्थितियों, घटनाओं, वातावरण के मध्य अनुभूत होता है, क्योंकि संत्रास का अनुभव व्यक्ति तभी कर सकता है, जब वह परिवेश और व्यवस्था की

---

1 पाण्डे, मृणाल, कैंसर (कहानी–संग्रह : यानी कि एक बात थी), राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1990, पृ०सं०–127

2 यथावत्, पृ०सं०–122

3 मदान, इन्द्रनाथ (डॉ०), आधुनिकता और हिन्दी साहित्य, राजकमल प्रकाशन प्रा०लि०, दिल्ली, सन्–1973, पृ०सं०–74

विसंगतियों को भोगता है और पाता है कि उसमें जीने का अर्थ निश्चित मृत्यु है।''[1] इस स्थिति में मनुष्य स्वयं को गतिहीन अनुभव करता है। उपन्यास 'अपनी गवाही' में कृष्णा अपने अति–व्यस्त जीवन में भी स्वयं को एकाकी महसूस करती है, ''जब भी उसे अकेलेपन का एहसास होता था तो मन करता था कि इस कुर्सी को सीढ़ियों से नीचे धकेलकर मेज के नीचे छुपकर बैठ जाए।''[2]

'रास्तों पर भटकते हुए' उपन्यास में भी मंजरी का घुटन और तनाव से भरा जीवन उसे खाली, अकेला एवं संत्रस्त बना देता है, ''सर पर न मैके की छत्रछाया है, न ससुराल की। सिर्फ एक मूर्खा दिवंगता माँ का चमकीला अन्तिम दुःख एक कठोर रक्तमणि की तरह मेरे माथे के ऐन बीचोबीच गड़ा हुआ है। व्याकुल मैं अश्वत्थामा की तरह यहाँ–वहाँ माथा झटकती भाग रही हूँ। और, मूर्ख डॉक्टर कहते हैं, यह माइग्रेन है।''[3]

कहानी 'कोहरा और मछलियाँ' में रति, बानो के विदेश चले जाने पर बेहद अकेली हो गयी है। घर में पिता बीमार तथा माँ अपने पुरुष मित्रों के साथ मौज–मस्ती में मग्न रहती है। रति को ''घर पर बिताया प्रत्येक दिन यह एहसास गहरा कर देता कि ये सब लोग एक अंतहीन, निरुद्देश्य नाटक के पात्र हैं– और वह है खाली हॉल के छोर पर बैठी अकेली दर्शक..... जिसकी दूरी ने शब्दों की बंधन–डोर काट दी है, और उसके सामने रह गये हैं चंद हिलते–डुलते पुतले.....।''[4]

''व्यक्ति का समाज, परिवार, समुदाय तथा भीड़ से अलग रहना ही अकेलापन है। व्यक्ति–व्यक्ति के मध्य की पहचान खो जाना ही अजनबीपन का संकेत है। अजनबीपन से ही अकेलेपन की अनुभूति होती है। अकेलापन मनोविकार है जो कि सामाजिक खिंचाव से उत्पन्न होता है।''[5] 'शरण्य की ओर' कहानी में विजया महानगरीय जीवन की आपाधापी में स्वयं को एकाकी पाती है। जंगल की सैर करने के उपरान्त वापिस फ्लैट में लौटने के विचार से वह घबरा जाती है,

---

1 धींगड़ा, सुरेश (डॉ०), हिन्दी कहानी : दो दशक, अभिनव प्रकाशन, नई दिल्ली, सन्–1978, पृ०सं०–36

2 पाण्डे, मृणाल, अपनी गवाही, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–2003, पृ०सं०–43

3 पाण्डे, मृणाल, रास्तों पर भटकते हुए, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्– 2000, पृ०सं०–45

4 पाण्डे, मृणाल, कोहरा और मछलियाँ (कहानी–संग्रह : यानी कि एक बात थी), राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1990, पृ०सं०–14

5 प्रेमशंकर (डॉ०), नयी कविता : नया मूल्यांकन, आर्यन प्रकाशन, नई दिल्ली, सन्–1998, पृ०सं०–79

''वापस जाकर फिर वही छोटा–सा खाली फ्लैट..... किताबों से गँधाता बेड़रूम..... और एक उचाट अकेलापन..... घर जाकर ममी को चिट्ठी भी देनी होगी– 'प्रिय ममी..... मैं.....?, पर क्या लिखेगी वह! इतना ही तो हुआ था कि महज एक दिन को वह एक शरण्य में गयी थी.....।''[1]

परिवार में ही अपरिचित की स्थिति व्यक्ति को अवसाद ग्रस्त बना देती है क्योंकि जीवन में अपनत्व का अभाव है। आज वह अपनों को खोज रहा है। कहानी 'व्यक्तिगत' में कथानायक घर में ही अजनबी तथा सूनेपन से त्रस्त है, ''चुप्पी–चुप्पी और चुप्पी। कितना सन्नाटा है इस घर में' उसने सोचा। कभी–कभी मन होता है कि कोई खूब जोर से हँसे या रोये या चीखे या कुछ भी करे ताकि यह चुप्पी भंग हो।''[2]

लेखिका द्वारा लिखित कहानी 'लकीरें' में भी माँ–बेटी के सम्बन्ध तनावग्रस्त हैं जिसके कारण बेटी में संत्रास का भाव उत्पन्न हो जाता है, ''उसका मन तो बस यही करता था कि कहीं जाकर छिप जाये। इतने गहरे कि कहीं कोई सोच भी नहीं पाये कि कोई साँवली–दुबली और सपाट लड़की कभी कहीं रही होगी। किसी अँधेरे तहखाने में, या किसी चलती रेलगाड़ी के अँधेरे डिब्बे में या कुछ नहीं तो सिर तक चादर खींचकर बिस्तरे में पड़ी ही रहे, पड़ी ही रहे जब तक कि सब उसके बारे में भूल.....।''[3]

वास्तव में ''संत्रास एकांत मन की स्थिति है, सुन्न हो जाने की स्थिति है। दिशाहारा होकर प्राणमय से किसी कोने में छिपकर बैठे रहने की स्थिति है, निपट अकेलेपन की स्थिति है। अर्थात् ऐसा अकेलापन, जहाँ भीड़ में होने पर भी व्यक्ति अकेला है।''[4]

---

1 पाण्डे, मृणाल, शरण्य की ओर (कहानी–संग्रह : यानी कि एक बात थी), राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा० लि०, नई दिल्ली, सन्–1990, पृ०सं०–57

2 पाण्डे, मृणाल, व्यक्तिगत (कहानी–संग्रह : यानी कि एक बात थी), राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1990, पृ०सं०–34

3 पाण्डे, मृणाल, लकीरें (कहानी–संग्रह : यानी कि एक बात थी), राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1990, पृ०सं०–192

4 रोहतगी, मिथलेश (डॉ०), हिन्दी की नई कहानी का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, शलभ बुक हाउस, मेरठ, सन्–1979, पृ०सं०–106

'एक नीच ट्रैजेडी' कहानी में नायिका सुधा की मौसी मालिनी अपने पारिवारिक परिवेश के कारण संत्रास ग्रस्त है। ''उनके आलिंगनों से सदा दवाइयों और अकेलेपन की उत्कट गंध आती थी। पर इस सबके बावजूद इस सारी त्रासदी में कुछ था जो बेहद कारुणिक और मानवीय भी था। मौसी का दुःख उस जीव का शब्दहीन दुःख था जो प्रकृति के अन्याय और स्थितियों के घटियापने के विरुद्ध अकेलेपन और शून्यता के छोरों पर बिना हथियार डाले जूझ रहा है। अपनी तरह से।''[1]

संत्रस्त अवस्था में दुःख व्यक्ति को भीतर–ही–भीतर सालता रहता है। घनीभूत पीड़ा मनुष्य को मानसिक आघात देती है। 'कगार पर' कहानी में विष्णु को यह आभास होता है कि उसके तथा मिली के मध्य एक ऐसा शून्य है जो उत्तरोत्तर गहरा और व्यापक होता जा रहा है। विदेशी हवा, प्रकाश तथा अन्धकार इस शून्य को और गहरा बना देते हैं। मिली, बच्चों सहित घर छोड़कर चली जाती है। घर का वातावरण और भी अधिक राक्षसी बन जाता है। ''घर खाली था। बहुत खाली। इतना कि उसकी चप्पलों की आवाज भी डरावनी लगती थी। उसने पर्दे खोल दिये। खिड़की के पार जाड़े के असमय सूर्यास्त से कमरा भर गया। नारंगी काला स्याह। घर में अभी भी उन लोगों के बहुतेरे निशान थे। खाली लिपस्टिक, जूते के तस्मे, बेसवॉल के पुराने दस्ताने, खाली–खाली पलंग, कॉरीडोर आँगन में जो भरी अलमारियों से भी ज्यादा कशिश के साथ उनके जाने का एहसास गहरा जाते थे।''[2] इस भयावह परिवेश में विष्णु आत्मघाती बन जाता है, ''बिल्ली के बच्चे की तरह दुबका–दुबका वह उनींदा घुरघुराता है– माँ? माँ उसे चिपका लेती है। फिर सब एक अस्वाभाविक उजाले में कौंधकर गड्ड–मड्ड होता जाता है। फिर अंधकार, सिर्फ।..... कॉरोनर ने अपना बयान दिया कि मौत नींद की गोलियों की अत्यधिक मात्रा से हुई थी।''[3]

---

1 पाण्डे, मृणाल, एक नीच ट्रैजेडी (कहानी–संग्रह : बचुली चौकीदारिन की कढ़ी), राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1990, पृ०सं०–52

2 पाण्डे, मृणाल, कगार पर (कहानी–संग्रह : यानी कि एक बात थी), राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि०, नई दिल्ली, सन्–1990, पृ०सं०–105

3 यथावत्, पृ०सं०–108

डॉ० देवीशंकर अवस्थी के मतानुसार, ''कभी तो मनुष्य अकेलेपन का स्वेच्छा से वरण करता है और कभी उसे चुनने के लिए बाध्य हो जाता है। बंधन में बंधकर भी मनुष्य अकेला है और ना बंधकर भी। अकेलेपन से उसे निष्कृति नहीं मिलती।''[1]

अतः मृणाल पाण्डे ने अकेलेपन, घुटन एवं संत्रास से पीड़ित मनुष्य की मनोस्थिति का सटीक अंकन अपने पात्रों द्वारा किया है।

निष्कर्ष

भारतीय समाज व्यष्टि की अपेक्षा समष्टि में विश्वास रखता है। भारतीय धर्म, संस्कृति तथा साहित्य में परिवार संस्था को उच्च स्थान प्रदान किया गया है। मृणाल पाण्डे ने अपने कथा–साहित्य में पारिवारिक आधार विषयक जो चिन्तन प्रस्तुत किया है वह कथानक की परिकल्पना होते हुए भी सामाजिक जीवन का यथार्थ है। संयुक्त परिवार में मैत्री भाव सामाजिक प्रतिष्ठा तथा आर्थिक सुरक्षा प्रदान करता है परन्तु द्वेष का पुट परिवार के विघटन का कारण बनता है। परिणामतः एकाकी परिवारों का जन्म हुआ, जिसमें पति–पत्नी तथा बच्चों की पारस्परिकता, सहयोग, भाईचारा तथा सामूहिकता सम्बन्धों का आधार बनती है। इसके विपरीत की स्थितियाँ एकल परिवार में तनाव एवं अवसाद पैदा करती हैं।

स्नेहपूर्ण पारिवारिक सम्बन्ध परिवार की हवा को स्वच्छ एवं शुद्ध बनाते हैं। लेकिन मानव के अर्थकेंद्रित दृष्टिकोण ने स्नेह, सद्भाव, सहयोग को खोकर स्वार्थपरता, घुटन, संत्रास को जन्म दिया है। पति–पत्नी तथा अन्य पारिवारिक सम्बन्धों में अपनत्व कम हो रहा है। विवाह–पूर्व एवं विवाहेतर सम्बन्ध सामाजिक संस्कृति को प्रदूषित ही कर रहे हैं क्योंकि सभ्य समाज में खुले सम्बन्ध स्वीकार्य नहीं हैं। सम्बन्धों के परिवर्तन से उत्पन्न पीढ़ीगत अंतराल तथा बुजुर्गों के साथ अछूतों–सा व्यवहार जीवन को जटिल तथा कठिन बना रहा है। लेखिका ने इन सरोकारों को गहनता से पकड़ा है। वह केवल लिखने के लिए नहीं लिखतीं, वे लिखती हैं क्योंकि इन विषयों पर लिखा जाना आवश्यक है।

--*-*-*

1 अवस्थी, देवीशंकर (डॉ०), नई कहानी : संदर्भ और प्रकृति, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली, सन्–1966, पृ०सं०–224